इकाई 5

रघुवंशम् (प्रथम सर्ग)

कथानक का सारांश, राजा दिलीप का चरित्र–चित्रण, प्रकृति–चित्रण, उपमा–वैशिष्ट्य

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- रघुवंश के प्रथम सर्ग के कथानक से परिचित होंगे।
- रघुवंशी राजाओं के चारित्रिक गुणों को जान पायेंगे।
- राजा दिलीप के विशिष्ट गुणों को भी विस्तार से जान सकेंगे।
- कालिदास द्वारा वर्णित प्रकृति के सजीव चित्रण एवं उनके उपमा के वैशिष्ट्य से परिचित हो सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

1. रघुवंश महाकाव्य उन्नीस सर्गात्मक है।
2. आलोचकों द्वारा उसकी प्रशंसा करते हुए महाकवि कालिदास के लिए 'रघुकार' संज्ञा का प्रयोग किया गया है– 'क इह रघूकारे न रमते'।

3. रघुवंश महाकाव्य में किसी एक नायक का वर्णन न कर कवि ने यह प्रतिज्ञा वाक्य प्रस्तुत किया हैः— रघूणामान्वयं वक्ष्ये .... उन्होंने सम्पूर्ण रघुवंशी राजाओं का वर्णन किया है क्योंकि वे उन रघुवंशियों के गुणों से अभिभूत हैं। मनु के वंश में राजा दिलीप का जन्म हुआ जिनका प्रथम सर्ग में मुख्य रूप से वर्णन है।

4. रघुवंश के आधार पर उपमा वैशिष्ट्य के कारण 'उपमा कालिदासस्य' सूक्ति प्रसिद्ध हुई और कहा गया और कालिदास दीपशिखा कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हुए।

5.2 काव्य—परिचय

रघुवंश महकवि कालिदास का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। रघुवंश महाकाव्य 19 सर्गों में विभक्त है। इस काव्य में 1 से 9 सर्गों में दिलीप, रघु, अज और दशरथ का वर्णन है, राम की कथा 10 से 14 सर्गों में तथा 15 से 19 सर्गों में कुश, अतिथि और उनके उत्तराधिकारियों से लेकर अग्निवर्ण तक का वर्णन किया गया है। इस प्रकार रघुवंश महाकाव्य में तीन खण्ड हैंः—

1. रघु खण्ड
2. राम खण्ड
3. अन्वय खण्ड।

लक्षण ग्रन्थों के आचार्यों ने महाकाव्य के अनेक लक्षण प्रस्तुत किये हैं— सर्गबद्धता, ऐतिहासिक कथानक, नायकाभ्युदय, सूर्यचन्द्रोदयवर्णन प्रकृति वर्णन, युद्ध, मन्त्रणा, आदि लगभग अनेक वर्ण्य विषय रघुवंश में पाये जाते है।

रघुवंश के अनेक टीकाकार हुए परन्तु मल्लिनाथ की सञ्जीवनी सर्वाधिक प्रसिद्ध टीका है।

रघुवंश प्रथम सर्ग में कालिदास ने महाकाव्य रचना का प्रयोजन भी संकेतित किया है— मन्दः कवियशःप्रार्थी, यशसे—विजिगीषूणाम् आदि अंशों से कवि यश को ही मुख्य रूप से काव्य का प्रयोजन स्वीकार करता है।

कालिदास ने सात ग्रन्थों की रचना की—

1.	महाकाव्य	—	1.	कुमारसंम्भवम्	2.	रघुवंशम्
2.	गीतिकाव्य	—	3.	ऋतुसंहारम्	4.	मेघदूतम्
3.	नाटक	—	5.	मालविकाग्निमित्र	6.	विक्रमोर्वशीयम्
			7.	अभिज्ञानशाकुन्तलम्		

5.3 कथानक सार (रघुवंश प्रथम सर्ग)

रघुवंश का प्रथम सर्ग काव्य सौन्दर्य और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अनुपम है। काव्य सौन्दर्य के लिए इस सर्ग की प्रशंसा विशेष रूप से की जाती है। इस सर्ग में सर्वदा सम्बद्ध संसार के माता—पिता परमेश्वर एवं पार्वती को नमस्कार करके नमस्कारात्मक मंगलाचरण सूर्यवंश का उद्भव, राजा दिलीप का पुत्र प्राप्ति हेतु महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में जाना तथा पुत्र प्राप्ति के लिए महर्षि द्वारा आशीर्वाद देने का वर्णन किया गया है।

कथानक —

शब्द और अर्थ के समान सर्वदा संबद्ध संसार के माता—पिता परमेश्वर और पार्वती को नमस्कार करके कविकुलगुरु कालिदास सूर्य से उत्पन्न रघुवंश का वर्णन करते हुए कहते है कि यद्यपि मैं रघुवंश का वर्णन करने में सर्वथा असमर्थ हूं, फिर भी वाल्मीकि आदि महाकवियों ने सूर्यवंश पर सुन्दर काव्य लिखकर वाणी रूपी द्वार खोल दिया है। इसलिए उसमें प्रवेश कर उस वंश का कुछ वर्णन करना मेरे

लिए सरल हो गया है। जिस प्रकार वज्र से बिधी मणियों में सूत्र प्रवेश सुगम हो जाता है उसी प्रकार मैं अपनी तुच्छ बुद्धि से प्रतापी रघुवंशियों का वर्णन कर सकूँगा, जिनका साम्राज्य समुद्र पर्यन्त फैला हुआ था, जिनके अजेय रथ पृथ्वी से सीधे स्वर्ग तक गमन करते थे। जो शास्त्रों के अनुसार यज्ञ करते थे, जो दान देने के लिए धन एकत्रित करते थे, जो सत्य की रक्षा के लिए मितभाषी थे, जो विजय की इच्छा के कारण दूसरे देशों को जीतते थे, जो भोगविलास के लिए नहीं वरन् सन्तति हेतु विवाह करते थे और जो वृद्धावस्था में पुत्रों को राज्य सौंपकर मुनियों के समान वन में रहकर तपोमय जीवन व्यतीत करते थे तथा अन्त में परमात्मा का ध्यान करते हुए अपने पंचभौतिक शरीर का त्याग कर देते थे।

जैसे वेद के छन्दों में सर्वप्रथम ओंकार है, उसी प्रकार राजाओं में सबसे पहले सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु हुए, जिनका समादर बड़े–बड़े तपस्वी, विद्वान् एवं महात्मा जन किया करते थे।

'वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव।।

उन्हीं वैवस्वत मनु के वंश में क्षीरसागर में उद्भूत चन्द्र के समान सबको सुख देने वाले तथा शुद्ध चरित्र वाले दिलीप ने जन्म लिया था। दिलीप का रूप जैसा देदीप्यमान था, वैसी ही उनकी बुद्धि तीव्र थी। वे न्याय में कठोर, पक्षपातरहित और अत्यन्त विनम्र थे। उनके राज्य में सभी मनु द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर चलते थे तथा व्यवस्था के अनुसार धर्म का पालन करते थे। सूर्य जिस प्रकार द्वारा पृथ्वी से जल ग्रहण कर पुनः वर्षा रूप से उसे ही प्रदान कर देता है। उसी प्रकार राजा दिलीप भी प्रजा से लिये हुए कर को उसी की भलाई में लगा देते थे।

'प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्त्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।

राजा दिलीप न तो अपने मन का भेद किसी को बताते थे, न किसी को जानने देते थे। कार्य सम्पन्न होने पर ही उनके मन की बात का अनुभव होता था। वे निडर होकर अपनी रक्षा करते थे तथा धैर्य के साथ अपनी प्रजा और धर्म की रक्षा किया करते थे। अपने जीवन को धर्मकार्यों के अनुष्ठानों में व्यतीत करते थे।

राजा दिलीप प्रजा से कर लेते थे किन्तु उसे वह इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए यज्ञों में लगा देते थे और इन्द्र के द्वारा वर्षा करने से प्रजा धनधान्य से पूर्ण थी। इस प्रकार राजा दिलीप और देवराज इन्द्र दोनों एक दूसरे की सहायता करके स्वर्ग और पृथ्वी का पालन करते थे। ब्रह्मा ने निश्चय ही राजा दिलीप को पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश इन पाँच तत्त्वों से ही बनाया है क्योंकि पाँचों तत्त्व हमेशा गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द गुणों से सारी सृष्टि की सेवा करते रहते हैं। दिलीप के गुणों से ही दूसरों का उपकार होता था। यज्ञ की पत्नी दक्षिणा की भाँति उनकी पत्नी–मगध–वंश में उत्पन्न सुदक्षिणा थी। उनकी इच्छा थी कि मेरी पत्नी सुदक्षिणा से सत्पुत्र जन्म ले। इसलिए वे राज्य–भार मन्त्रियों को सौंपकर अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ रथ पर बैठकर कुलगुरु वसिष्ठ के आश्रम की ओर चल पड़े। आश्रम में बाधा न हो इस कारण से उन्होंने थोड़े सेवकों को साथ लिया। मार्ग में शाल वृक्ष की गन्ध को, पुष्प–पराग को और वन–वृक्षों के पत्तों को धीरे–धीरे प्रकम्पित करता हुआ पवन उन्हें सुख देता हुआ प्रवाहित हो रहा था।

सायंकाल के समय दिलीप अपनी पत्नी के साथ वसिष्ठ जी के आश्रम पर पहुँचे, जहाँ अग्निहोत्र का धुआँ पवन के कारण चारों ओर फैलकर अतिथियों को पवित्र कर रहा था। तब राजा दिलीप ने आश्रम के पूर्व ही सारथि द्वारा रथ खड़ा कराकर पहले सहारा देकर पत्नी को रथ से उतारा, बाद में स्वयं उतरे। यह समाचार पाकर सभ्य संयमी मुनियों ने अपने रक्षक राजा का सपत्नीक सम्मान के साथ स्वागत किया। सन्ध्याकालीन क्रियायें पूर्ण होने पर राजा दिलीप ने कुलगुरु वसिष्ठ के दर्शन किए, जिनके पीछे पतिव्रता अरून्धती उसी प्रकार बैठी थी जैसे अग्नि के पीछे स्वाहा देवी बैठी हों। राजा दिलीप तथा

उनकी धर्मपत्नी मगधराजकुमारी सुदक्षिणा ने श्रद्धापूर्वक चरण स्पर्श कर उनकी वन्दना की और गुरु तथा गुरुपत्नी ने बड़े प्रेम से आशीर्वाद देकर उनका सत्कार किया। तदनन्तर महर्षि ने राजा से पूछा कि आपके राज्य, मन्त्री, मित्र, राजकोष, राज्य, दुर्ग और सेना, ये सातों अंग कुशलपूर्वक हैं और दैवी आपत्तियाँ, अग्नि, जल, महामारी और अकाल मृत्यु तथा चोर, डाकू, शत्रु आदि मानुषी आपतियाँ भी आपके प्रभाव से दूर हो जाती हैं।

उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वङ्गेषु यस्य मे।
दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्ता त्वमापदाम्।।

आपके मन्त्रों के प्रभाव से मेरे राज्य में कोई कष्ट नहीं है। आपके ब्रह्म तेज के प्रताप से मेरी प्रजा में सब पूर्णायु वाले हैं तथा ईतियों से रहित हैं। जब आप स्वयं ब्रह्मा के मानसपुत्र ही हमारे कुलगुरु होकर हमारे कल्याण की बातें सोचते हैं, तो हमारा राज्य निर्विध्न क्यों न रहें।

राजा दिलीप ने कहा कि महाराज! आपकी इस पुत्रवधू सुदक्षिणा को सन्ततिहीन देखकर सप्तद्वीपा यह पृथ्वी भी मुझे अच्छी नहीं लगती। अब तो मुझे ऐसा आभास होता है कि मेरे पश्चात् मुझे पिण्ड देने वाला भी नहीं रह जायेगा।

इसी दुःख से मेरे पितर भी मेरे दिए हुए श्राद्ध के अन्न को न खाकर रोने लगते हैं और सोचने लगते हैं कि मेरे पीछे इनको कौन तर्पण आदि करेगा। इसलिए हे गुरुदेव! अब कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे मुझे पुत्ररत्न हो और मैं पितृऋण से मुक्त हो जाऊँ, क्योंकि इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की सभी कठिनाइयाँ आपकी कृपा से हमेशा दूर हो जाती रही हैं। राजा की बात सुनकर वसिष्ठजी ने क्षण भर के लिए नेत्र बन्द कर योगबल से ध्यान लगाकर सन्तति–निरोध का रहस्य जानकर कहा–हे राजन्! एक बार जब तुम देवासुर–संग्राम में इन्द्र की सहायता करके पृथ्वी पर लौट रहे थे, तब मार्ग में कल्पवृक्ष की छाया में कामधेनु बैठी थी। उस समय तुमने उसकी प्रदक्षिणा न कर गलती कर दी। अतः अपमानित होकर उसने शाप दे दिया जब तक तुम मेरी सन्तति की सेवा नहीं करोगे तब तक तुम्हें पुत्र नहीं होगा। उस समय बड़े–बड़े मतवाले दिग्गज आकाशगंगा में खेलते हुए चिंघाड़ रहे थे, इसलिए उस शाप को न तो तुम सुन सके, न तुम्हारा सारथि ही।

इस समय तो कामधेनु पाताल लोक में वरुणदेव के यज्ञ में आहुति की सामग्री हेतु गयी है। उस लोक के द्वारों पर बड़े–बड़े विषधर सर्प रखवाली कर रहे हैं। अतः इस समय उसका दर्शन दुर्लभ है। इसलिए तुम उसकी पुत्री नन्दिनी को ही प्रतिनिधि समझकर रानी सहित शुद्ध मन से उसकी सेवा करो।

इधर वसिष्ठजी यह कह ही रहे थे कि सुलक्षणा नन्दिनी वन से लौटकर आ गई। अपने वत्स को देखकर उसके थनों से गरम–गरम दूध टपकने लगा। शकुन को जानने वाले वसिष्ठ दिलीप से बोले–राजन्! तुम्हारा मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण होगा क्योंकि यह नन्दिनी नाम लेते ही आ पहुँची है। तुम कन्द, मूल, फल खाते हुए इसकी सेवा करो–जब यह चले तब तुम भी इसके पीछे–पीछे चलना, जब खड़ी जो जाये तब तुम भी खडे हो जाना, जब यह बैठे तब तुम बैठ जाना और जब यह पानी पीने लगे तभी तुम भी पानी पीना।

प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाः स्थितायां स्थितिमाचरेः।
निषण्णायां निषीदास्यां पीताम्भसि पिबेरपः।।

तुम्हारी पत्नी सुदक्षिणा को चाहिए कि वह नित्य प्रातःकाल बड़ी भक्ति से इसकी पूजा किया करे और जब यह वन को जाने लगे तब यह तपोवन की सीमा तक उसके पीछे–पीछे जाये तथा सायंकाल लौटते समय वहीं से अगवानी करके उसे आश्रम में ले आये। जब तक यह गौ प्रसन्न न हो जाय तब तक तुम इसकी इसी प्रकार सेवा करते रहो। ईश्वर करे तुम्हें कोई बाधा न हो और जिस प्रकार तुम अपने पिता के सुयोग्य पुत्र हो वैसे ही तुम्हें भी सुयोग्य पुत्र प्राप्त हो। राजा ने बड़ी नम्रता से वसिष्ठजी से कहा कि हम ऐसा ही करेंगे। बाद में उन्होंने तथा उनकी धर्मपत्नी सुदक्षिणा ने गुरुजी से इस व्रतपालन की आज्ञा

ली। रात अधिक हो चली थी। विद्वान्, सत्यवक्ता ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ ने राजा दिलीप को सोने की आज्ञा दी और पर्णकुटी में कुशा की चटाई पर शयन करने का प्रबन्ध किया। कुलपति वसिष्ठ जी ने जो पर्णकुटी बताई, उसी में राजा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए रानी सुदक्षिणा के साथ कुशा की चटाई पर ही सोए। प्रातः वसिष्ठ जी ने जब अपने शिष्यों को वेद पढ़ाना प्रारम्भ किया तब उसकी ध्वनि से ही राजा दिलीप उठ बैठे।

5.4 राजा दिलीप का चरित्र–चित्रण

रघुवंश महाकाव्य के प्रथम सर्ग में महाकवि कालिदास ने रघुवंशी राजाओं के चारित्रिक गुणों का वर्णन किया है। तदनन्तर राजा दिलीप के व्यक्तित्व की महनीयता का विवेचन किया गया है। सूर्यवंशी जो शुद्ध सनातन, वैदिक संस्कारों से पवित्र थे। उनका राज्य समुद्र के समान विस्तृत था। किसी कार्य को प्रारम्भ करने के पश्चात् उसके फल की सिद्धि को पूरा करके ही रहते थे। जिनके रथ का मार्ग स्वर्ग लोक तक फैला था।

महाकवि कालिदास राजा दिलीप के जन्म के सन्दर्भ में लिखते हैंः–

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमतरः।
दिलीप इति राजेनूदुरिन्दुः क्षीरनिधाविव।।

अर्थात् सूर्यवंश में हुए वैवस्वत नामक मनु के अति उत्तम कुल में राजा दिलीप का जन्म ठीक वैसे ही हुआ है जैसे क्षीर समुद्र में चन्द्रमा था।

5.4.1 शारीरिक सौष्ठव

राजा दिलीप के व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए कालिदास ने लिखा है–

व्यूढोस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्त्रो धर्म इवाश्रितः।।

राजा दिलीप असाधारण शौर्य से परिपूर्ण थे। महाराज दिलीप का उन्नत शरीर, विशाल वक्ष स्थल, हृष्टपुष्ट कन्धों और लम्बी लम्बी भुजाओं से युक्त ऐसा प्रतीत होता था मानो साक्षात् क्षत्रिय धर्म ही नर रूप धारण करके स्थित हो। वे न केवल शस्त्र विद्या में ही निपुण थे बल्कि शास्त्र विद्या में भी पारंगत थे। उन्होंने शस्त्र और शास्त्र विद्या के प्रभाव से सम्पूर्ण शत्रुओं को परास्त करके अपने साम्राज्य में मिला लिया।

5.4.2 उत्कृष्ट प्रजापालक

राजा दिलीप श्रेष्ठ आश्रयदाता और प्रजापालक थे। राजा दिलीप में भयङ्कर और मनोहर गुणों का समन्वय ठीक उसी प्रकार था जिस प्रकार समुद्र में विषैले जन्तु और अनमोल रत्न। महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप को उपमा के माध्यम से कुशल सारथि कहा है–

रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम्।
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः।।

अर्थात् एक कुशल सारथिरथ के पिछले पहिये अगले पहियों द्वारा बने मार्ग से नाम मात्र भी इधर उधर नहीं होने देता, उसी प्रकार मनु के समय से चली आ रही परम्पराओं का निर्वाह दिलीप की प्रजा उसके नेतृत्व में कर रही थी। महाराजा दिलीप अपनी प्रजा के हित के लिए उनसे कर भी लेता था, जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी को धन धान्य से परिपूर्ण और हरियाली से युक्त करने के लिए जल को सोख लेता है।

राजा दिलीप सच्चे अर्थों में प्रजा के पिता थे। विनम्रता की शिक्षा देने से, संकट में रक्षा करने से

और समय पड़ने पर अन्न जल आदि से भरण पोषण करने के कारण महाराजा दिलीप ही सचमुच प्रजाओं के पिता थे और उन प्रजाओं के अपने पितृगण तो केवल जन्म देने के ही कारण थे।

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।

5.4.3 गुप्तमंत्रणा

राजा दिलीप अपने विचारों को गुप्त ही रखा करते थे। जब किसी उत्तम कार्य का परिणाम लोगों के सामने आता तो उन्हें ज्ञात होता कि राजा ने किसी कार्य को प्रारम्भ किया था। राजा दिलीप किसी के भी प्रति आसक्त नहीं थे। सदा निर्लोभ रहा करते थे। धर्माचरण उनकी दिनचर्या का एक अड्ग था। राजा दिलीप के गुणों का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास ने लिखा है–

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाधाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात् तस्य सप्रसवा इव।।

अर्थात् ज्ञानी होते हुए भी मौन रहना, सामर्थ्यवान होते हुए भी क्षमा करना तथा दान करने पर भी स्वयं की प्रशंसा न करना आदि गुण एक दूसरे के विपरीत होते हुए भी राजा दिलीप में इस प्रकार विद्यमान थे मानों वे परस्पर सहोदर (जुडवॉ) हो।

5.4.4 ज्ञानवृद्ध

धर्मानुरागी राजा दिलीप अपने गुणों के कारण वृद्धावस्था के बिना ही वृद्ध थे। जो गुण या योग्यताएं अन्य व्यक्ति अपनी चतुर्थ अवस्था में प्राप्त करते थे वे सभी उन्होंने अपने यौवन काल में ही अर्जित कर ली थी। इस प्रकार महाकवि कालिदास राजा दिलीप की विद्वत्ता एवं गम्भीरता का वर्णन करते हैं –

अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः।
तस्य धर्मतेरासीद् वृद्धत्वं जरसा विना।।

5.4.5 आदर्श शासक

राजा दिलीप सज्जनों का सदा आदर करते थे। चाहे वह शत्रु पक्ष का भी क्यों न हो? जैसे रोगी व्यक्ति औषधि कडवी होने पर भी उसे से ग्रहण करता है। जिस प्रकार सर्प द्वारा डसी हुई अगुंली भले ही हाथ का एक प्रिय अड्ग होती है। उसे कटवाना पड़ता है उसी प्रकार वह राजा भी दुष्ट जनों का परित्याग कर देता था, भले ही वे निकट संबंधी या स्नेही हों। इस प्रकार राजा दिलीप में एक आदर्श राजा के सभी गुण विद्यमान थे। दोनों पंक्तियाँ उत्कृष्ट प्रजापालक शीर्षक के अन्तर्गत ले जाएं।

5.4.6 गुरु के प्रति श्रद्धावान्

सूर्यवंशी राजा दिलीप गुरु के प्रति सदैव श्रद्धावान् रहते थे। राज्य में किसी भी प्रकार का संकट आने पर वे गुरु से विचार–विमर्श करते थे। अपने मन में सन्तान की पीड़ा का अनुभव करने के पश्चात् वे गुरु के आश्रम में पहुँचे। गुरु ने ही सन्तान न होने का कारण तथा उसका समाधान बतलाया।

5.5 प्रकृति चित्रण

महाकवि कालिदास प्रकृति के अनन्य उपासक थे। प्राकृतिक दृश्यों का जैसा हृदयग्राही वर्णन कालिदास ने किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। प्रकृति वर्णन में इतनी सजीवता है, भव्यता और स्वाभाविकता है कि श्रोताओं और पाठकों के मन बरबस इनमें रम जाते हैं।

5.5.1 अन्तः प्रकृति बाह्य प्रकृति

महाकति कालिदास प्रकृति के उपासक हैं उन्होंने अन्तः प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति दोनों का चित्रण किया है। शास्त्रों में प्रकृति के दो भेद स्वीकार किये गये हैं। एक वन, पर्वत नदी आदि दृश्यमान् पदार्थों के रूप में बाह्य प्रकृति तथा दूसरी काम क्रोध, मोह आदि प्रवृत्तियों से युक्त मानव स्वभाव में निहित अन्तः प्रकृति।

कालिदास प्रकृति को चेतन एवं भावनायुक्त मानते हैं। पशु पक्षी आदि तो चेतनवत् व्यवहार करते ही हैं। सम्पूर्ण चराचर प्रकृति भी मानव की भाँति व्यवहार करती दिखायी पड़ती है। मानव प्रकृति का निरीक्षण तथा मानव–हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं का अत्यन्त आकर्षक वर्णन करना कालिदास की ही विशेषता है।

प्रकृति की अनुभूति के साथ कवि अपने मानवीय जीवन का प्रतिबिम्ब भी समन्वित करता है। इस अभिव्यक्ति में प्रकृति मानवीय जीवन के समानान्तर प्रतीत होती है। काव्य में प्रकृति स्वयं में लीन और क्रियाशील चित्रित होती है, परन्तु यह मानवीय चेतना का प्रतिबिम्ब ही है। प्रकृति मानवीय क्रिया व्यापारों के साथ उसके भावों का प्रतिबिम्ब ग्रहण करती है। कवि अपनी कल्पना में विभिन्न भावों को प्रकृति पर प्रतिघटित करता है।

5.5.2 प्रकृति का मानवीकरण

कालिदास की काव्य कला का विकास ही प्रकृति वर्णन से प्रारम्भ होता है जो कि उनकी काव्य–प्रतिभा है कि उनकी रचनाओं में कथानक गौण है, प्रकृति मुख्य है। महाकवि कालिदास की धारणा है कि स्त्री–पुरूष के समान ही लता वृक्षादि भी उसी चैतन्य से चेतन हैं, मानव के साथ इनका चिरस्थायी अटूट संबंध है। इसी कारण मानव अपने सुख दुख का रूप प्रकृति में देखता है।

राजा दिलीप और सुदक्षिणा सम्पूर्ण राज्य का कार्यभार अपने मन्त्रियों को सौंपकर गुरु वसिष्ठ के आश्रम में अपनी व्यथा सुनाने पहुँचे। उस समय रथ पर बैठे राजा दिलीप और सुदक्षिणा ऐसे लग रहे थे मानों वर्षा कालीन बादल पर आरूढ़ होकर विद्युत और ऐरावत चले जा रहे हैं। उस समय मार्ग में सुखद वायु का अनुभव करते है। आनन्दप्रद सुख देने वाले शाल नामक वृक्षों के सुगन्धित फूलों के परागकणों को उडाने वाले मार्गस्थ वन वृक्षों की पंक्तियों को धीरे–धीरे हिलाने वाली वायु से सेवा प्राप्त करते हुए दोनों चल रहे थे। रथ के पहिये की ध्वनि को मेघ की ध्वनि समझकर मयूर ऊपर की ओर मुख कर शुद्ध और विकृत स्वर जैसी मनोरम मधुर वाणी कर रहे थे।

श्रेणीबन्धाद् वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम्
सारसः कलनिह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ।।

अर्थात् कहीं कहीं पँक्तिबद्ध सुन्दर कलरव करते हुए स्तम्भाधार विहीन आकाश में उड़ते हुए सारस पक्षी बन्दनवार (पुष्पमाला) के सदृश सुशोभित हो रहे थे। यह सब कुछ देखते हुए वे दोनों गुरु आश्रम की ओर चले जा रहे थे। वायु का अनुरूप दिशा की ओर चलना उनके मनोरथों की पूर्ति का सन्देश था।

महाकवि कालिदास शिशिर ऋतु के पश्चात् प्रकट होने वाला चित्रानक्षत्र का उपमा अलंकार के रूप में वर्णन करते हैः–

काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः
हिमनिमुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव।।

अर्थात् श्वेत वस्त्र धारण किये हुए महाराज दिलीप और महारानी सुदक्षिणा की वैसी ही अनिवर्चनीय शोभा हो रही थी जैसी शिशिर ऋतु के बाद चैत्री पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र के साथ

चन्द्रमा की होती है। कुलगुरु वशिष्ठ के आश्रम में पुत्र के समान पाले गये मृगों के अनाज के दाने खाने का वर्णन भी मनोरम है।

आश्रम के समीप रहने वाले पशु पक्षियों के विश्वास के लिए वृक्षों को सींचने वाली मुनि कन्याओं के द्वारा सींचने के पश्चात् तत्काल हट जाने पर पक्षी निर्भय होकर जल का पान करते थे।

5.6 उपमा वैशिष्ट्य

काव्य में शोभा का आधान करने वाले तत्त्व के रूप में अलंकारों का सहित्य में प्रभूत प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। महाकवि कालिदास अंलकार–प्रयोग–विचक्षण हैं। विशेष रूप से सादृश्यमूलक अलंकारों के प्रयोग में कालिदास अद्वितीय हैं। आलोचकों के द्वारा 'उपमा कालिदासस्य' इस आमाणक के द्वारा उनके उपमाप्रयोग की भूरि–भूरि प्रशंसा की गई है।

उपमा अलंकार का लक्षण है– 'प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते अर्थात् स्पष्ट एवं सुन्दर सादृश्य उपमा अलंकार कहलाता है।

प्रस्फुट से तात्पर्य है कि सादृश्य स्पष्ट होना चाहिए। रूपकादि अलंकारों में सादृश्य स्पष्ट नहीं होता अपितु गम्य होता है। सुन्दरम् का अर्थ है कविकल्पनाप्रसूत अर्थात् चमत्कार अथवा सौदर्न्य को उत्पन्न करने वाला साम्य ही उपमा अंलकार कहलाता है।

उपमा कालिदास का अत्यन्त प्रिय अलङ्कार है। कालिदास की विशेषता यह है कि उनके उपमा प्रयोगों में लिङ्गसाम्य, भावसाम्य और रमणीयता का अनुपम समन्वय है। उनकी उपमायें एकांगी न होकर सर्वांगीर्ण और व्यापक हैं। उनकी उपमा का एक सुन्दर उदाहरण ग्रन्थ के आदिश्लोक में द्रष्टव्य हैः–

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।

वागर्थाविव पद उपमान है और 'पार्वती परमेश्वरौ' पद उपमेय है। पार्वती तथा परमेश्वर को कवि ने शब्द और अर्थ के समान सम्पृक्त माना है। जिस प्रकार शब्द और अर्थ परस्पर दृढ सम्बन्ध होते हैं उसी प्रकार पार्वती तथा परमेश्वर भी परस्पर दृढरूपेण सम्बद्ध हैं।

नन्दिनी गाय राजा दिलीप और सुदक्षिणा के बीच वैसी ही शोभा पा रही है। जैसी दिन और रात के मध्य में होने वाली रक्त वर्ण सन्ध्या– "दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या"। उपमा की यह कल्पना कितनी स्वभाविक और यथार्थ है।

रघुवंशी राजाओं का वर्णन करने में कालिदास की गति उसी प्रकार सुगम है। जिस प्रकार वज्र से उत्कीर्ण मर्णी में सूत्र का प्रवेश सुकर हो जाता है–

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः।।

राजा दिलीप को चन्द्रमा के समान मानते हुए कवि कहते है – रघुकुल में श्रेष्ठ राजा दिलीप पैदा हुए जिस प्रकार क्षीर समुद्र से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ–

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतिः शुद्धिमत्तरः
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव।।

महर्षि वसिष्ठ के आश्रम की ओर प्रस्थान करते हुए राजा दिलीप और सुदक्षिणा एक ही रथ पर बैठकर गये थे। दोनों रथ में बैठे हुए इस प्रकार सुशोभित हुए जैसे वर्षाकालीन बादल पर आरूढ़ होकर विद्युत और ऐरावत सुशोभित होते हैं। इसमें सुदक्षिणा को विद्युत की तथा दिलीप को ऐरावत हाथी की उपमा दी गई है–

स्निग्धगम्भीर निर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ।
प्रावृषेण्यं पयोवाह विद्युदैरावताविव।।

हरे भरे वन पथ से गुरु वसिष्ठ के आश्रम की ओर जाते हुए स्वच्छ वस्त्र धारण किये हुए दिलीप और सुदक्षिणा उस प्रकार सुशोभित हुए जिस प्रकार शिशिर ऋतु में चैत्र की पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा की अनिर्वचनीय शोभा होती है।

काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव।।

इस प्रकार उपमा प्रयोगों से रघुवंश में अनिर्वचनीय शोभा का अध्याहार कर महाकवि कालिदास ने 'उपमा कालिदासस्य' सूक्ति को सार्थक कर दिया है।

वाल्मीकि की काव्यशैली का उदात्त–उत्कर्ष कालिदास की रचनाओं में प्रस्फुरित हुआ है। रघुवंश में कालिदास ने पूर्वसूरिभिः का कथन कर आदि कवि की ओर संकेत किया है।

रघुवंश कालिदास की प्रौढतम प्रतिभा की प्रसूति समझा गया है विद्वानों का ऐसा अनुमान है कि संस्कृत के आचार्यों ने महाकाव्य के जो लक्षण निर्धारित किए है, उनका आधारभूत स्रोत 'रघुवंश' ही है। लोकप्रियता में यह ग्रन्थ–रत्न सर्वथा अनुपमेय है और इस पर उपलब्ध 40 टीकाएं उपलब्ध हैं।

रघुवंश में वर्णित राजाओं का आख्यान कालिदास ने अनेक स्रोतों से ग्रहण किया है। प्रारमभ में ही स्वयं को मन्दमति किन्तु 'कवियशः प्रार्थी' बताते हुए उन्होंने अपने पूर्ववर्ती वाल्मीकि आदि कवियों के प्रति आभार व्यक्त किया है जिन्होंने सूर्यवंश पर मनोरम काव्य रचकर वाणी का द्वार पहले ही खोल दिया है।

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति में गतिः।

रघुवंश एक चरितकाव्य है। अतएव इसमें अनेक रुचिर एवं प्रभावोत्पादक चरित्रों की अवतारणा हुई है। दिलीप रघु, अज, दशरथ, राम सभी आदर्श सम्राट के रूप में संजोए गए हैं। विलक्षण शौर्य, शास्त्रानुशीलन, औदार्य एवं क्षमाशीलता, प्रजानुरंजन शासनकुशलता, तपश्चरणप्रियता, स्वार्थोत्सर्ग, वर्णाश्रम, धर्मपालन तथा सबसे बढकर लौकिक मूल्यों की तुलना में पारलौकिक मूल्यों की वरीयता से सभी गुण इन नरपतियों में उपलब्ध होते हैं।

5.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने महाकवि कालिदास विराचित रघुवंश प्रथमसर्ग की कथावस्तु, रघुवंशियों के गुणों, राजा दिलीप के चरित्र का वैशिष्ट्य विस्तार से जाना। कालिदास उपमा एवं अर्थान्तरन्यास के अनुपम प्रयोक्ता हैं। दोनों ही अलङ्कारों का प्रचुर प्रयोग कालिदास के काव्यों में प्राप्त होता है। आपने कतिपय उदाहरणों सहित इन अलङ्कारों के सन्दर्भ में कालिदास के वैशिष्ट्य को जाना साथ ही रघुवंश प्रथम सर्ग के आधार पर प्रकृति–चित्रण की सजीवता एवं सौन्दर्य का अध्ययन किया।

5.9 बोध–प्रश्न

1. रघुवंश किस महाकवि की रचना है–
   (क) अश्वधोष (ख) भारवि
   (ग) कालिदास (घ) कुमार दास
2. रघुवंश महाकाव्य में कितने सर्ग हैं–
   (क) 20 (ख) 19 (ग) 8 (घ) 15
3. महाकवि कालिदास के कितने महाकाव्य हैं–

(क) 2 (ख) 1 (ग) 4 (घ) 7

4. महाराजा दिलीप की पत्नी का क्या नाम है –

(क) इन्दुमती (ख) अदिति

(ग) सुदक्षिणा (घ) सीता

5. रघुवंश प्रथम सर्ग के आधार पर महाराजा दिलीप का चरित्र चित्रण कीजिए।

6. रघुवंश के प्रथम सर्ग का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

7. रघुवंश प्रथम सर्ग के आधार पर प्रकृति चित्रण कीजिए।

5.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

1. रघुवंशम् (प्रथम सर्ग), तारिणीश झा, रामनारायण लाल, अरूण कुमार, 2 कटरा रोड, इलाहाबाद।
2. रघुवंशम् (प्रथम सर्ग), डॉ. श्रीकृष्ण ओझा, राजप्रकाशन मन्दिर जयपुर।
3. कालिदास (प्रो.वि.वि.मिराशी का खण्डन)–डॉ.रमाशङ्कर त्रिपाठी, ओरियन्टालिया, वाराणसी।
4. महाकवि कालिदास– डॉ रामशंकर तिवारी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।
5. कालिदास–ग्रन्थावली– आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।
6. कालिदास परिशीलन– सम्पादक प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर।
7. कालिदास की समीक्षा–परम्परा–प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत विभाग, डॉ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर।

5.10 बोध–प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. ख
3. क
4. ग
5. द्रष्टव्य 5.4
6. द्रष्टव्य 5.3
7. द्रष्टव्य 5.5

इकाई–6

रघुवंशम् (प्रथम सर्ग)

की श्लोक संख्या 1 से 30 तक श्लोकों का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद, भावार्थ, व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी, काव्यगत वैशिष्ट्य–छन्द, अलंकार आदि, सूक्ति व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

संस्कृत महाकवियों में कालिदास का अनुपम व्यक्तित्व एवं कृतित्व सर्वाधिक प्रषंसनीय है। रघुवंश महाकाव्य कालिदास की सर्वश्रेष्ठ कृति है अतएव कालिदास को रघुकार नाम से भी व्यवहृत किया गया है। रघुवंश महाकाव्य की लोकप्रियता तथा व्यापकता का परिचय इस महकाव्य पर लिखित टीकाओं के अस्तित्व से विधिवत् जाना जा सकता है। रघुवंश के प्रथम सर्ग का विधिवत् अध्ययन करवाना प्रमुख उद्देश्य है किन्तु इसके साथ–साथ महाकवि कालिदास की कविता में माधुर्य, प्रसाद पदों की सरसता अर्थ का सौष्ठव एवम् अलङ्कारों का मञ्जुल प्रयोग प्रदर्षित कर काव्य के हृदय पक्ष को उजागर करना भी प्रमुख उद्देश्य का अभिन्न अंग है।

6.1 प्रस्तावना

महाकवि कालिदास संस्कृत कविता के अनुपम श्रृंगार हैं। आपके काव्य में मानवीय भावनाओं का चित्रण सहज रीति से प्रकट हुआ है। प्रकृति चित्रण के आप अनुपम कवि हैं। आपकी कविता में प्रकृति स्पष्ट रूप से मुखरित होती है रघुवंश के प्रथम सर्ग में अपनी विनम्रता का प्रदर्शन करते हुए महाकवि कालिदास ने रघुवंशी राजाओं की विशेषताओं पर विशद प्रकाश डाला है तथा सन्तति रहित महारानी सुदक्षिणा एवं राजा दिलीप के वशिष्ठ आश्रम गमन का वर्णन किया है। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि गुरुदेव की असीम कृपा से उन्हें मनोवाञ्छित समाधान प्राप्त हो जायेगा। वशिष्ठ आश्रम तक जाने वाले मार्ग का वर्णन प्रकृति चित्रण तथा ग्रामवासियों के साथ संक्षिप्त वार्तालाप आदि के माध्यम से अत्यन्त हृदयग्राही हो गया है।

6.2 रघुवंशम् – श्लोक संख्या 1 से 30

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।1।।

अन्वय (अहम्) वागर्थप्रतिपत्तये वागार्थाविव सम्पृक्तौ जगतः पितरौ पार्वतीपरमेश्वरौ वन्दे।

प्रसङ्ग– महाकवि **कालिदास** ने रघुवंश महाकाव्य की रचना करते समय काव्य की निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिये पार्वती और शिवजी का अभिवादन करते हुये मङ्गलाचरण कर रहे हैं।

अनुवाद— मैं, कालिदास शब्द और अर्थ के सम्यक्—ज्ञान के लिये, शब्द और अर्थ के समान सदैव परस्पर मिले हुए संसार के माता—पिता पार्वती और भगवान् शिव की वन्दना करता हूँ।

भावार्थ— मैं, कवि कालिदास शब्द और अर्थ के ज्ञान के लिए, शब्द और अर्थ के नित्य सम्बन्ध की तरह शाश्वत् रूप से संयुक्त संसार के माता—पिता पार्वती और शिव की वन्दना करता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी — वागार्थौवाक् च अर्थः च (द्वन्द्व) तौ (द्वितीया द्वि) संपक्तौ—सम् + पश्च् (सम्पर्के) + क्त (द्वितीया द्वि.)। जगतः—जगत् + षष्ठी ए.व.। पितरौ—माता च पिता च पिता च (एकषेष द्वन्द्व) तौ। पार्वती.—पर्वतस्य अपत्यं स्त्री पार्वती, ईशितुं शीलम् अस्य ईश्वरः, परमः च असौ ईश्वरः परमेश्वरः (कर्म); पार्वती च परमेश्वरः च पार्वतीपरमेष्वरौ (द्वन्द्व) तौ (द्वितीया द्वि) माता के पूज्य होने के कारण समास में पार्वती का पहले प्रयोग हुआ है। मनु के **'उपाध्यायानां दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता। सहस्रं तु पित न् माता गौरवेणातिरिच्यते।'** इस लोक में माता की पूज्यता बतलाई गई है। **'पतिता गुरवस्त्याज्या नैव माता कदाचन। गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी।'** इस कथन से भी इसकी पुष्टि होती है। वागर्थ.—वाक् च अर्थः च वागर्थौ (द्वन्द्व), तरोः प्रतिपत्तिः वागर्थप्रतिपत्तिः (श. तत्पु.) तस्यै (चतुर्थी ए.)। वन्दे—वन्द् (आत्मने) + लट् उत्तम ए.।

छन्द— इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है। अनुष्टुप् छन्द का लक्षण निम्न प्रकार है—

पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्वि चतुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयाद् एतदनुष्टुप्लक्षणम्।।

अर्थात् जिस शब्द के प्रत्येक चरण में पाँचवाँ अक्षर लघु तथा छठा अक्षर गुरु हो तथा दूसरे एवं चौथे चरण का सातवां अक्षर लघु हो उसे अनुष्टुप् कहते हैं।

अलङ्कार उपमा— 'प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते' प्रस्तुत पद्य में पार्वती, शंकर की शब्द और अर्थ से प्रदर्शित की गयी है, अतः उपमा अलङ्कार है।

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्वचाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।।2।।

अन्वय — सूर्यप्रभवः वंशः क्व, अल्पविषया (मम) मतिः च क्व, (अहम्) मोहात् उड्डुपेन दुस्तरं सागरं तितीर्षुः अस्मि।

प्रसङ्ग — प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने अपनी अहङ्कार शून्यता प्रकट की है।

अनुवाद—कहाँ सूर्य से उत्पन्न होने वाला वंश और कहाँ मेरी अत्यन्त क्षुद्र बुद्धि (इनमें महान् अन्तर है इस अन्तर को जानते हुये भी मैं मूर्खतावश उस वंश का वर्णन उसी प्रकार करने की इच्छा कर रहा हूँ जिस प्रकार कोई कठिनाई से पार करने योग्य अगाध समुद्र को छोटी नौका से पार करने की इच्छा करता है।

भावार्थ— कवि कहता है, कि कहाँ तो सूर्य से उत्पन्न होने वाला यह यश और कहाँ अल्प ज्ञान वाली मेरी बुद्धि। इनमें कहीं पर भी साम्य नहीं है। सूर्यवंषियों के उदात्त चरित्र का मेरे द्वारा वर्णन किया जाना, मेरी मूर्खतापूर्ण चेष्टा का प्रयास ही है जिस तरह मानों कोई अज्ञानी व्यक्ति अपनी छोटी सी नौका से विस्तृत समुद्र को पार करने की दुश्चेष्टा कर रहा हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— सूर्य.—सूर्यः प्रभवः यस्य सः (ब.व्री.)। अल्पविषया—अल्पः विषयः यस्याः सा (ब.व्री.)। दुस्तरम्दुःखेन तरितुं (तरीतुं वा) शक्यम् (दुस् + तृ + खल्)। उड्डुपेन—उड्डनः (=जलात्) पति इति उडुपः (उपपद समास) तेन। तितीर्षुः—तरीतुम् इच्छति तितीर्षति (=तृ + सन् + लट् प्रथमा ए.), तितीर्षति इति तितीर्षु.— (तितीर्ष + उ)। अस्मि—अस् लट् उत्तम पु.ए.।

छन्द— इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

अलङ्कार निदर्षना। इसका लक्षण निम्न प्रकार है–

अभवन् वस्तु सम्बन्धः उपमापरिकल्पकः।
निदर्शना भवेत्सेयं मम्मटेन यथोदिता।।

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः।।3।।

अन्वय– मन्दः कवियशः प्रार्थी प्रांषुलभ्ये फले लोभात् उद्बाहुः वामनः इव उपहास्यताम् गमिष्यामि।

प्रसङ्ग– महाकवि कालिदास ने प्रस्तुत पद्य में अपनी अतिशय विनम्रता प्रस्तुत करते हुए काव्य रचना करने की असामर्थ्य का कथन करते हैं –

अनुवाद– मन्द बुद्धि वाला होता हुआ भी मैं महान् कवियों के यश को प्राप्त करने की इच्छा कर रहा हूँ। अतः मैं उसी प्रकार हँसी का पात्र बनूँगा जिस प्रकार लम्बे मनुष्य के हाथ से प्राप्त होने योग्य फल को बौना मनुष्य हाथ उठाकर प्राप्त करने की इच्छा करता हुआ हँसी का पात्र बनता है। तात्पर्य यह है कि जिस फल को या वस्तु को महान् लम्बा या श्रेष्ठ व्यक्ति प्राप्त कर सकता है, यदि उसे प्राप्त करने की इच्छा बौना या नीच व्यक्ति करे तो लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं।

भावार्थ– कवि कहता है कि कवि होने के यश को प्राप्त करने की इच्छा वाला मैं उसी तरह विद्वान् व्यक्तियों की हँसी का पात्र बनूँगा, जिस तरह लम्बे कद वाले व्यक्ति के द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली वस्तु को प्राप्त करने के लोभ से अपनी भुजाओं को ऊपर उठाकर प्रयास करने वाला बौना व्यक्ति हंसी का पात्र हुआ करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– कवयन्ति इति कवयः कवीनां यशः कवियशः, कवियशः प्रार्थयितुम् शीलम् अस्य इति कवियशः प्रार्थी। लब्धुम् योग्यम् लभ्यम्, प्रांषून लभ्यम् प्रांषुलभ्यम्, तस्मिन् प्रांषुलभ्ये। उच्छ्रितौ बाहू यस्य स उद्बाहुः। उपहास्यस्य भावः उपहास्यता, ताम् उपहास्यताम्।

छन्द–अनुष्टुप्।

अलङ्कार–उपमा

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः।।4।।

अन्वय– अथवा पूर्वसूरिभिः कृतवाग्द्वारे अस्मिन् वंशे वज्रसमुत्कीर्णे मणौ सूत्रस्य इव मे गतिः अस्ति।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास कहते हैं कि ग्रन्थ रघुवंश महाकाव्य की रचना करने में मन्द बुद्धि होने पर भी महाकाव्य लिखना सम्भव है। क्योंकि पूर्वाचार्यों ने इस वंश के सन्दर्भ में रामायण आदि ग्रन्थ लिखकर वाग्द्वार उद्घाटित किया है।

अनुवाद– अथवा प्राचीन वाल्मीकि आदि कवियों के द्वारा पहले से ही प्रवेश के लिए इस वंश का द्वार खोल दिया गया है अतः इस वंश के वर्णन में मेरी गति उसी प्रकार से सम्भव है। जैसे सुई से छिदे हुये हीरे की मणि में कोमल डोरे का प्रवेश हो जाता है।

भावार्थ– अथवा जिस तरह कठोर रत्न (मणि) में सुई जैसे यन्त्र के द्वारा एक बार छेद कर दिये जाने पर कोमल धागा सहज ही प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार पूर्ववर्ती विद्वान कवियों वाल्मीकि आदि के द्वारा अपनी वाणी के द्वारा इस रघुवंश के वर्णन किये गये प्रवेश–द्वार में मेरी गति सहज सम्भाव्य है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– पूर्व.–सूते सूयते वा इति सूरिः, पूर्वे च ते सूरयः इति पूर्वसूरयः (कम.) तैः। कृत.–वाचे द्वारं–वाग्द्वारं (च. तत्पु.), कृतं वाग्द्वारं यस्मिन् सः कृतवाग्द्वारः (ब.व्री.) तस्मिन्। अस्मिन्–इदम् (पु.) + सप्तमी ए.। वज्र.–वज्रेण समुत्कीर्णः (तृ . तत्पु.) तस्मिन्। समुत्कीर्ण–सम् + उत् + कृ + क्त। मणौ–मणि = सप्तमी ए.। अस्ति–अस् + लट् प्रथमा ए.।

छन्द– अनुष्टुप्।

अलङ्कार– उपमा।

सोऽहमाजन्मशुद्धानामौंलोदयकमणाम्।
आसमुद्रक्षितीक्षानामानाकरथवर्त्मनाम्।।5।।

अन्वय–सः अहम् आजन्मषुद्धानाम्, औंलोदयकमणाम्, आसमुद्रक्षितीषानाम्, आनाकरथवर्त्मनाम् (रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये)।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने रघुवंश में प्रवेश पाकर सोऽहम् इत्यादि एक वाक्य के रूप में परस्पर सम्बद्ध पाँच श्लोकों के समुदाय रूप कुलक द्वारा रघुवंश वर्णन की प्रतिज्ञा की है।

अनुवाद– वह मैं कालिदास जन्म से शुद्ध एवं सदाचारी, फल प्राप्ति पर्यन्त कार्य को करने वाले, समुद्र पर्यन्त पृथिवी का शासन करने वाले तथा स्वर्ग तक रथ यात्रा करने वाले रघुवंशियों के वंश का वर्णन करूँगा।

भावार्थ– कवि रघुवंषियों के उदात्त गुणों का वर्णन करता है और स्पष्ट करता है कि मैं कालिदास जीवनभर शुद्ध आचरण करने वाले, फल की प्राप्ति तक निरन्तर कर्म करने वाले वे सदैव अपने कर्मों के फल को प्राप्त करते हैं क्योंकि वे कर्म निष्पादन में मनसा, वाचा, कर्मणा निष्काम हैं। वे दैव अपने कार्य को पूर्ण करते हैं, कार्य को अधूरा नहीं छोड़ते। समुद्र तक की सारी पृथ्वी के वे चक्रवर्ती शासक हैं, उनके रथ की गति (पृथ्वी तक ही सीमित नहीं है) स्वर्ग तक है। अर्थात् रथ की अबाधित गति से वे सर्वत्र भ्रमण करते हैं। इस तरह विशेष गुणों वाले रघुवंशियों के वंश का मैं वर्णन करता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– आजन्म–जन्मनः आ (जन्मनः) आरम्भ जन्म अभिव्याप्य = जन्म से आरम्भ करके, जन्म को शामिल करके अर्थात् जन्म भर इति आजन्म (अव्ययी.), आजन्म शुद्धाः इति आजन्मषुद्धाः (सुप्सुपेति समासः) तेषाम्। आफलो.–फलस्य उदरः फलोदयः (ष. तत्पु.), फलोदयात् आ (फलोदयम् अभिव्याप्य = फल प्राप्त होने तक) आ (फलोदयम् (अव्ययी.), आफलोदयं कर्म येषां ते आफलोदयकर्माणः (ब.व्री.) तेषाम्। आसमुद्र.–समुद्रात् आ (=समुद्रमभिव्यापय=समुद्र को शामिल करके अर्थात् समुद्र पर्यन्त। आसमुद्रं (अव्ययीभाव), आसमुद्रं क्षितिः इति आसमुद्रक्षितिः (सुप्सुपेति समासः) तस्याः ईषाः आसमुद्रक्षितीषाः (षष्ठी तत्पुरुष) तेषाम्। आनाक.–न कं (=सुखं) अकं (नञ् तत्पु.) न अंक (=दुःख) विद्यते यत्र सः नाकः (ब.व्री.) (यहाँ पर न को अन आदेष नहीं होता है) नाकात् आ (=नाकम् अभिव्याप्य) आनाकं (अव्ययी.) रथस्य वर्त्म रथवर्त्म (षष्ठी तत्पुरुष) आनाक रथवर्त्म येषां ते आनाकरथवर्त्मानः (ब.व्री.) तेषाम्। आजन्मनः–आङ् के साथ मर्यादा तथा अभिविधि अर्थों में पञ्चमी विभक्ति होती है और अव्ययीभाव समास होता है।

यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्।।6।।

अन्वय– यथाविधिहुताग्नीनाम्, यथाकामार्चितार्थिनाम्, यथापराधदण्डानाम्, यथा–कालप्रबोधिनाम् (रघूणाम् अन्वयम् वक्ष्ये।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा रघुवंशी राजाओं के वंश का वर्णन है।

अनुवाद– विधि विधान पूर्वक सम्यक् रीति से अग्नि में हवन करने वाले, याचकों को उनकी इच्छानुसार सन्तुष्ट करने वाले, अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार दण्ड देने वाले, निरन्तर जागरुक रहने वाले अथवा समर आने पर सदैव कार्य करने के लिये तत्पर रहने वाले रघुवंशियों का मैं वर्णन करूँगा।

भावार्थ– रघुवंशी राजाओं के गुणों का उल्लेख करते हुए कवि कहता है कि मैं विधिपूर्वक हवन इत्यादि करने वाले, इच्छापूर्ति तक भिक्षुकों को दान देने वाले याचकों तथा आवश्यकता वालों की मनोरथ पूर्ण करने वाले अपराध की गम्भीरता के अनुरूप ही अपराधियों को दण्ड देने वाले तथा समर के अनुसार ही जागरूक होकर अपने कर्तव्य पालन में प्रजापालन आदि में तत्पर रहने वाले रघुवंशियों के वंश का वर्णन

करता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– यथाविधि.–विधिम् अनतिक्रम्य यथाविधिः (अव्ययी), यथाविधि हुताः (अथवा यथाविधि हुत) (सुप्सुपेति समासः), यथाविधिहुताः अग्नयः रै ते (अथवा यथाविधिहुतम् अग्निषु यैः ते) यथाविधि हुताग्नयः (ब.ब्री.) तेषाम्। यथाकामा.–कामम् अनतिक्रम्य यथाकामं (अव्यय.), यथाकामम् अर्चिताः यथा कामार्चिताः (सुप्सुपेति समासः), यथाकामार्चिताः अर्थिनः यैः ते यथाकामार्चितार्थिनः (ब.ब्री.) तेषाम्। यथापराध.–अपराधम् अनतिक्रम्य यथापराधम् ;अव्ययी.), यथापराधं दण्डः येषां ते यथापराधदण्डा. (ब.ब्री.) तेषाम्। यथाकाल.–कालम् अनतिक्रम्य यथाकालम् (अव्ययी.) यथाकालं प्रबोधिनः यथाकालप्रबोधिनः (सुप्सुपेति समासः) तेषाम्।

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।।7।।

अन्वय– त्यागाय संभृतार्थानाम्, सत्याय मितभाषिणाम्, यशसे विजिगीषूणाम्, प्रजायै गृहमेधिनाम् (रघूणामन्वयं वक्ष्ये)।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा रघुवंशी राजाओं के गुणों का वर्णन किया गया है।

अनुवाद– दान देने के निमित्त धन का संग्रह करने वाले, सदैव सत्य एवम् मधुर भाषण करने वाले तथा अल्प भाषण करने व सत्य की रक्षा के लिए सदैव अल्प भाषण करते थे कि अधिक बोलने से कहीं असत्य भाषण न हो जाय यश के लिये दिग्विजय की अभिलाषा रखने वाले तथा केवल सन्तान प्राप्ति के लिये ही विवाह करने वाले रघुवंशियों का मैं वर्णन करूँगा।

भावार्थ– कवि कहता है कि रघुवंश के राजा दान इत्यादि के लिए ही धन एकत्र करने वाले सत्य की रक्षा के लिए ही कम बोलने वाले, यश–प्राप्ति के लिए ही दूसरे राजाओं के राज्यों पर विजय प्राप्त करने की इच्छा वाले तथा सन्तानोत्पत्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले रघुवंशियों के वंश का वर्णन करता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– त्यागाय, सत्याय, यशसे तथा प्रजायै–चारों में तादर्थ्य (के वास्ते यश के निमित्त इस अर्थ) में चतुर्थी विभक्ति। सम्भृता.–संभृतः अर्थः यैः ते संभृतार्थाः (ब.ब्री.) तेषाम्। मितभाषिणाम्–मितं भाषते तच्छीलाः मितभाषिणः (उपपद समास) तेषाम्। विजिगीषूणाम्विजेतुम् इच्छन्ति इति विजिगीषन्ति (वि + जि + सन् + लट् प्रथम ब.), विजिगीषन्ति इति विजिगीषवः (विजिगीष + उ) तेषाम्। गृहमेधिनाम् (1) गृहैः (=दारैः) गृर्हेण (जायया) वा मेधन्ते (=संगच्छन्ते) इति (उपपद समास), (2) गृहान् (=दारान्) गृहं (=जायां) वा मेधन्ते (=सेवन्ते) इति (उपपद समास), (3) गृहमेधं (=विवाहः–) विद्यते येषां ते (गृहमेध + इन) गृहमेधिनः तेषाम्।

विशेष– इन उपर्युक्त सभी विशेषणों के द्वारा रघुवंशी राजाओं का परोपकारित्व, सत्यवचनत्व, शुद्धत्व आदि व्यक्त किया गया है।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।8।।

अन्वय– षैषवे अभ्यस्तविद्यानाम्, यौवने विषयैषिणाम् वार्द्धके मुनिवृत्तीनाम् अन्ते योगेन तनुत्यजाम् (रघूणामन्वयं वक्ष्ये)।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा रघुवंशी राजाओं के गुणों का वर्णन किया गया है।

अनुवाद– बाल्यकाल में ही समस्त विद्याओं का अभ्यास करने वाले युवा अवस्था में विषय भोग की इच्छा करने वाले, वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति को धारण करने वाले तथा अन्त में समाधि द्वारा शरीर छोड़ने वाले रघुवंशियों का मैं वर्णन करूँगा।

भावार्थ– कवि वर्णन करता है कि बाल्यावस्था में विद्याओं के अभ्यास में लगे रहने वाले युवावस्था में

विषयों के उपभोग में लगे रहने वाले, वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति का आश्रय लेने वाले तथा अन्त में योग से सुखपूर्वक शरीर का त्याग करने वाले रघुवंशियों के वंश का वर्णन करता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— षैषवे—षिषोः भावः शैषवः (षिषु + अण्) तस्मिन्। अभ्यस्त.—अभ्यस्ताः विद्याः यैः ते अभ्यस्तविद्याः (ब.व्री.) तेषाम्। यौवने—युनः भावः यौवनं (युवन् + अण्) तस्मिन्। विषयै.—विषयम् इच्छन्ति इति विषयैषिणः (उपपद.) तेषाम्। वार्द्धके—वृद्धस्य भावः वार्द्धक (वृद्ध + वृञ् = अक्) तस्मिन्। मुनि.—मुनीनां वृत्तिः इव वृत्तिः येषां ते मुनिवृत्तयः (मध्यपदलोपी ब.व्री.) तेषाम्। तनु.—तनुं त्यजन्ति इति तनुत्यजः (उपपद.) तेषाम्।

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः।।9।।

अन्वय— तनुवाग्विभवेन अपि सन् तद्गुणैः कर्णम् आगत्य चापलाय प्रचोदितः अहम् रघूणाम् अन्वयम् वक्ष्ये।

प्रसङ्ग— प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा रघुवंशी राजाओं के वंश का वर्णन है।

अनुवाद— वाक्शक्ति की अल्पता होते हुए भी कान के निकट आकर रघुवंशियों के गुणों के द्वारा यह चपल कार्य करने के लिए प्रेरित कर दिया गया हूँ, अतः मैं उनके कुल का वर्णन करूँगा।

भावार्थ— वाणी की सामर्थ्य के कम होने पर भी मुझमें कवित्व शक्ति के सीमित होने पर भी; अपने पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा कथित कथाओं के माध्यम से अपने कानों से सुनकर विवेकहीन चंचल बुद्धि से प्रेरित होकर मैं कवि कालिदास रघुवंशियों के वंश का गुणगान करने के लिए तैयार हो गया हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— वाचां विभवः वाग्विभवः, तनुः, वाग्विभवः यस्य सः तनुवाग्विभवः। तद्गुणैः तेषां गुणः तद्गुणा (षष्ठी तत्पुरुष) तैः। आगत्य आ + गम् + ल्यप्। चापलाय—चपलस्य कम चापलं (चपल + अण्) तस्मै चापलार (= चापलं कर्त्तुम्) = चापलं प्रयोग न की हुई तुमुन्नन्त क्रिया (=कर्त्तुम्) का कर्म है इसलिए यहाँ पर चतुर्थी विभक्ति। प्रचोदितः—प्र + चुद् (चुरादि) + क्त। तनु. वाचः विभवः वाग्विभवः (श. तत्पु.), तनुः वाग्विभवः यस्य सः तनुवाग्विभः (ब.व्री.)। सन्—अस् + शतृ प्रथमा ए.।

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा।।10।।

अन्वय— सद् असद् व्यक्तिहेतवः सन्तः (तम्) श्रोतुम् अर्हन्ति। हि हेम्नः विशुद्धिः अपि वा श्यामिका अग्नौ संलक्ष्ये।

प्रसङ्ग— प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास विवेकशील समीक्षकों से अपने प्रबन्ध की परीक्षा के लिए प्रार्थना की है।

अनुवाद— सत् असत् और गुण, दोष आदि की परीक्षा करने वाले ही मेरी कविता को सुनने के योग्य हैं, क्योंकि वे सज्जन पुरुष अच्छे और बुरे का विवेचन करने में समर्थ हैं। जैसे सोने की शुद्धता और श्यामता की परीक्षा केवल आग में ही हो सकती है अन्यत्र नहीं, उसी प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान ही मेरी कविता के सच्चे रूप में पारखी हो सकते हैं।

भावार्थ— गुण और अवगुण को अभिव्यक्त करने के हेतु सज्जन आलोचक महोदय ही हैं, अतः मेरे द्वारा रचित इस महाकाव्य को वे सुनने योग्य हैं, क्योंकि स्वर्ण की विशुद्धता और श्यामिका खरा—खोटापन अग्नि से ही जाना जाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— सद.—सत् च असत् च सदसती (द्वन्द्व), तयोः व्यक्ति सदसद्व्यक्तिः (षष्ठी तत्पुरुष), तस्याः हेतवः सदसद्व्यक्तिहेतवः (ष. तत्पु.)। सन्तः— अस् + शतृ (पु.) + प्रथमा ब.। श्रोतुम् श्रु + तुमुन्। अर्हन्ति—अर्ह + लट् प्रथम ए.व.। हेम्न—हेमन् + षष्ठी ए.।

छन्द–अनुष्टप्।

अलङ्कार– अर्थान्तरन्यास। इसका लक्षण निम्न प्रकार है–

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्र सोऽर्थान्तरन्यासो साधर्म्येणेतरेण वा।।

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव।।11।।

अन्वय– मनीषिणाम् माननीयः वैवस्वतः नाम मनुः छन्दसां प्रणवः इव महीक्षिताम् आद्यः आसीत्।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास रघुवंश महाकाव्य की वर्ण्य वस्तु का वर्णन करने के लिये रघुकुल के आदिपुरुष का वर्णन करते हैं।

अनुवाद– मनस्वी विद्वानों में अग्रगण्य वैवस्वत मनु नाम वाले राजा समस्त पृथ्वीपतियों में उसी प्रकार पूज्य तथा अग्रगण्य हुये जिस प्रकार वेदों में ओंकार अग्रगण्य तथा सर्वश्रेष्ठ होता है।

भावार्थ– वेदमंत्रों में ओम्कार सदृश, पृथ्वी के राजाओं में प्रथम पूज्य तथा विद्वानों में सम्माननीय सूर्यपुत्र (वैवस्वत) मनु (रघुवंशियों में प्रथम महापुरुष) थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– वैवस्वतः विवसाः (=किरणः) विद्यन्ते यस्य असौ विवस्वान् (=सूर्यः), विवस्वतः अपत्यं पुमान् (विवस्वतः = अण्)। मनीषिणाम्–इषा अस्य अस्ति इति इषी, मनसः इषी मनीषी (ष. तत्पु.)। तेषाम् (निर्धारणे षष्ठी)। माननीयः–मान् (चुरादि) + अनीयर। महीक्षिताम्–महीं क्षियन्ति (ईषते) मह्यां क्षिपन्ति (निवसन्ति) इति वा महीक्षितः (उपपद.) तेषाम् (निर्धारणे षष्ठी)। आसीत्– अस् + लङ् प्रथम ए.व.।

छन्द–अनुष्टुप्।

अलङ्कार–उपमा।

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव।।12।।

अन्वय– षुद्धिमति तदन्वये शुद्धिमत्तरः दिलीप इति राजेन्दुः क्षीरनिधौ इन्दु इव प्रसूतः।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने रघुवंश के प्रधान पुरुष रघु के पिता दिलीप के जन्म का वर्णन करते हैं।

अनुवाद– अत्यन्त पवित्र उस वंश में राजाओं में श्रेष्ठ चन्द्रमा के समान दिलीप नाम से एक राजा उत्पन्न हुआ, जो क्षीर समुन्द्र में चन्द्रमा के समान था।

भावार्थ– जिस तरह क्षीरसागर में चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, उसी की भाँति उस परम पवित्र बुद्धिवाले (मनु) के उस वंश में बहुत अधिक विशिष्ठ पवित्र बुद्धि से युक्त राजाओं में चन्द्रमा सदृश राजा दिलीप उत्पन्न हुए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– षुद्धिमतिषुद्धः अस्य अस्ति इति षुद्धिमान् (शुद्धि + मत्) तस्मिन्। तदन्वये तस्य अन्वयः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मिन्। शुद्धिमत्तरः अयम् अनयोः अतिषयेन, शुद्धिमान्–षुद्धिमत् + तप् (प्रथमा ए.)। राजेन्दुः–राजा इन्दुः इव (कर्म)। क्षीरनिधौ–क्षीरस्य निधिः (ष. तत्पु.) तस्मिन्। प्रसूतः–प्र + सू + क्त।

छन्द– अनुष्टुप्।

अलङ्कार– उपमा।

विशेष – रघुवंश सूर्य से उत्पन्न है अतः अत्यधिक पवित्र है किन्तु राजा दिलीप उससे भी अधिक पवित्र हैं।

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकमक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः।।13।।

अन्वय— व्यूढोरस्कः वृषस्कन्धः शालप्रांषुः महाभुजः आत्मकमक्षमं देहम् आश्रितः क्षात्रः धर्मः इव।

प्रसङ्ग— प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के शरीर की विशेषताओं का वर्णन किया है।

अनुवाद— उस राजा दिलीप का वक्षः स्थल चौड़ा तथा बैलों के कन्धों के समान उनके बलिष्ठ तथा चौड़े कन्धे थे, शालवृक्ष के समान उनकी भुजायें मोटी तथा लम्बी थीं, उन्हें देखकर ऐसा ज्ञात होता था, मानो साक्षात् क्षात्र धर्म ने ही अपने कर्त्तव्य के अनुरूप देह को धारण कर लिया था।

भावार्थ— मनुपुत्र उस दिलीप का विशाल वक्ष था। वृषभ सदृश उसके कंधे थे। शालवृक्ष के समान मजबूत और उसकी दोनों भुजायें लम्बी थी। अपने क्षत्रिय धर्म के निर्वाह करने में समर्थ उसके शरीर का क्षात्र–धर्म ने ही मानो आश्रय लिया हुआ था। अर्थात् दिलीप का शरीर ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वयं क्षत्रिय धर्म (पराक्रम) ने ही साक्षात् शरीर धारण कर लिया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— व्यूढोरस्कः व्यूढम् उः यस्य सः (ब.व्री.)। व्यूढ–वि + ऊह + क्त। वृषस्कन्धः वृषस्य स्कन्धः इवः स्कन्धः यस्य सः (श.ब्री.) शालप्रांषुः–षाल इव प्रांषुः (कर्म.) महाभुजः–महान्तौ (जानुपर्यन्तौ) भुजौ यस्य सः (ब.व्री.)। आत्म.–आत्मनः कर्म आत्मकर्म (श. तत्पु.द्ध तस्मिन् क्षमः आत्मकमक्षमः स. तत्पु.) तम् आश्रितः–आ + श्रि + क्त। क्षात्रः–क्षतात् त्रायते इति क्षात्र, क्षत्रस्य अयम् (क्षत्र + अण्)।

छन्द– अनुष्टुप्।

अलङ्कार– उत्प्रेक्षा। 'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा'।

सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिभाविना।
स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वी क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना।।14।।

अन्वय— सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोऽभिभाविना सर्वोन्नतेन आत्मना मेरुः इव उर्वीम् क्रान्त्वा स्थितः।

प्रसङ्ग— प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के सामर्थ्य का वर्णन किया है।

अनुवाद— समस्त लोगों से अधिक बलशाली होने के कारण, समस्त लोगों से अधिक तेजस्वी होने के कारण और सबसे अधिक उन्नत होने के कारण अपने द्वारा ऐसे राजा दिलीप समस्त पृथ्वी को अपने अधिकार में करके उसी प्रकार स्थित थे जैसे समस्त पृथ्वी को आक्रान्त करके सुमेरु पर्वत स्थित है।

भावार्थ— अन्य सभी प्राणियों की अपेक्षा अत्यधिक शक्तिशाली होने से, सभी प्राणियों को अपने तेज से तिरस्कृत सा करके, सभी प्राणियों की अपेक्षा अधिक ऊँचा होने से वह सारी पृथ्वी को घेर कर सुमेरू पर्वत के समान खड़ा था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— सर्वा.–सर्वेषाम् अतिरिक्ततरः सर्वातिरिक्ताः (ष. तपु.), तादृषः यस्य सः (अथवा सर्वेभ्यः अतिरिक्तः सर्वातिरिक्तः (ष. तत्पु.), तादृषः सारः यस्य सः) सर्वातिरिक्त सारः (ब.व्री.) तेन। सर्व. –सर्वाणि (भूतानि) तेजसा अभिभवति इति अथवा सर्वेषां तेजः (षष्ठी तत्पुरुष) तत् अभिभवति इति सर्वतेजोभिभावी (उपपद)। सर्वो.–सर्वेभ्यः उन्नतः सर्वोन्नतः (षष्ठी तत्पुरुष) तेन। क्रान्त्वाक्रम् + क्त्वा। स्थितः–स्था + क्त।

छन्द— अनुष्टुप्।

अलङ्कार— उपमा। सुमेरू पर्वत की उपमा द्वारा राजा दिलीप की देहयष्टि की देदीप्यमानता एवं सर्वातिशायिता का वर्णन किया गया है।

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदरः।।15।।

अन्वय– आकारसदृषप्रज्ञः प्रज्ञया सदृषागमः, आगमैः सदृषारम्भः, आरम्भ सदृषोदरः (स आसीत्)।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा राजा दिलीप के आन्तरिक व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है।

अनुवाद– राजा दिलीप का जैसा शरीर था उसी प्रकार उनकी बुद्धि भी थी और जैसी उनकी बुद्धि थी उसी प्रकार उन्हें शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान भी था, जिस प्रकार का उन्हें शास्त्रों का ज्ञान था उसी प्रकार वे उद्योग भी किया करते थे और जैसे उनके उद्योग होते थे उनको उसी प्रकार सफलता भी प्राप्त होती थी।

भावार्थ– महाराज दिलीप शरीर से ही न केवल बलशाली थे वरन् शरीर के अनुरूप ही उनमें विशिष्ट बुद्धि थी। उनमें जिस तरह विशेष बुद्धि थी, उसी के अनुरूप ही वे अध्यवसायी थे। इस तरह ये बुद्धिमान् और परिश्रमी थे। विवेक से सश्रम कार्य करने में लगे रहते थे। सोच विचार कर ही वे कार्य करने में प्रवृत्त होते थे। विवेक पूर्ण कार्य शैली अपनाने से उसके अनुरूप ही कृतकार्य का फल प्राप्त होता था। इस प्रकार दिलीप प्रतिभावान्, परिश्रमी, विवेकशील तथा किये गये कार्य के सुफल का उपभोग करने वाले थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– आकार–आकारेण सदृषी आकारसदृषी (तृ.त.पु.), आकारसदृषी प्रज्ञा यस्य सः (ब.व्री.)। सदृषागमः–सदृष आगमः यस्य सः (ब.व्री.)। सदृषारम्भः–सदृषः आरम्भ यस्य स (ब.व्री.)। आरम्भ आरम्भेण सदृष आरम्भसदृषः (तृ.तत्पु.), तादृषः उदयः यस्य सः (ब.व्री.)।

छन्द– अनुष्टुप्।

अलङ्कार मालोपमा।

भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः।।16।।

अन्वय– भीमकान्तैः नष्पगुणैः स उपजीविनाम् यादोरत्नैः अर्णव इव अधृष्य च अभिगम्यः च बभूव।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के भयावह और मनोरम का वर्णन किया है।

अनुवाद– भयंकर (तेज, प्रताप आदि) और मनोहर (दया, दाक्षिण्य) आदि राजगुणों के कारण वह राजा दिलीप समुद्र के समान थे जैसे समुद्री जलजीवों के भय से लोग समुद्र के निकट जाने का साहस नहीं करते परन्तु रत्नों को प्राप्त करने की इच्छा से उसका आश्रय लेते हैं। इसी प्रकार दिलीप के शौर्य–तेज आदि गुणों के कारण प्रजा उनसे डरती भी थी और उनकी कोमलता आदि के कारण उनसे प्रीति भी करती थी।

भावार्थ– जिस प्रकार समुद्र जलजीवों के कारण भयभीत बनाने वाला होता है और बहुमूल्य रत्नों के कारण सेवन करने योग्य बना रहता है उसी प्रकार दिलीप के कुछ भयंकर गुणों (तेज, बल और दण्ड आदि) के कारण सम्पर्क में आने वाले लोगों के लिए भयंकर बना हुआ था परन्तु अपने कमनीय गुणों (उदारता, दयालुता आदि) के कारण वह अपने आश्रितों के लिए समादरणीय भी था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– भीमकान्तैः–भीमा च कान्ता च भीमकान्ता (द्वन्द्व) तैः। नृपगुणैः–नृपाणां गुणाः नृपगुणाः (षष्ठी तत्पुरुष) तैः। उपजीविनाम्–उपजीवन्ति (उप + जीव् + इन्) इति उपजीविनः तेषाम्। यादोरत्नैः–यादांसि च रत्नानि च यादोरत्नानि (द्वन्द्व) तैः। अधृष्यः–धर्षितुं योग्यः (धृष + य) धृष्यः, न धृष्यः अधृष्यः (नञ् तत्पु.)। अभिगम्यः–अभिगन्तुं योग्यः (अभि + गम् + य)। बभूवभू + लिट् प्रथम ए.।

छन्द– अनुष्टुप्।

अलङ्कार– उपमा।

रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम्।
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः।।17।।

अन्वय– नियन्तुः तस्य नेमिवृत्तयः प्रजाः आ मनोः क्षुण्णात् वर्त्मनः परम् रेखामात्रम् अपि न व्यतीयुः।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के शासन की प्रशंसा करते हुए उसकी आज्ञापालक प्रजा मनु द्वारा बताये गये मार्ग पर स्थित थी इसका वर्णन किया है।

अनुवाद– शिक्षक तथा शासन करने वाले महाराज दिलीप को प्रजा मनु के बताये हुए आचार मार्ग का उसी प्रकार रंचमात्र उल्लंघन नहीं करती थी, जिस प्रकार अच्छे सुयोग्य सारथी के द्वारा हाँके जाते हुए रथ के पिछले पहिये अगले पहिये के बने हुए मार्ग का अतिक्रमण नहीं करते।

भावार्थ– जिस प्रकार कुशल सारथी के द्वारा सञ्चालित रथ का पिछला पहिया आगे के पहिये की लीक का अनुसरण करता है, थोड़ा भी इधर–उधर नहीं हटता; उसी प्रकार राजा दिलीप के कुशल शासन में उसकी प्रजा मनु से लेकर आज तक अभ्यस्त मार्ग से थोड़ा भी बिना हटे, उसका अनुसरण कर रही थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– नियन्तुः–निरच्छति (नि + रम् + तृ) इति नियन्ता तस्य। नेमि.–नेमीनां वृत्तिनां इव वृत्तिः यासां ताः (ब.व्री.)। आमनोः–(=मनुम् आरभ्य इति अभिविधिः) अभिविधि अर्थ में आ के योग में मनु से पंचमी, समास वैकल्पिक इसलिए समास नहीं। क्षुण्णात्–क्षुद् + क्त पंचमी ए.। वर्त्मनः–वर्त्मन् + पंचमी ए.। रेखामात्रम्–रेखा प्रमाणम् अस्य (रेखा + मात्रम्) इति। व्यतीयुः–वि + अति + इ + लिट् प्रथम ब.।

प्रजानामेव भूत्यर्थे स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।18।।

अन्वय– सः प्रजानाम् भूत्यर्थम् एव ताभ्यः बलिम् अग्रहीत्, हि रविः सहस्रगुणम् उत्स्रष्टुम् रसम् आदत्ते।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप द्वारा प्रजा से जो कर ग्रहण करते थे, उस कर को प्रजा के कल्याण के लिये खर्च करते थे, इसका वर्णन करते हैं।

अनुवाद– वह राजा दिलीप प्रजा के कल्याण के लिये ही उनसे कर लिया करता और जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी से कर रूप में जल लेकर सहस्र गुण बढ़ाकर वर्षा रूप में पृथ्वी को देकर उसे धान्यसम्पत्ति से पूर्ण कर देता है, उसी प्रकार राजा भी अधिक से अधिक प्रजा को सुख पहुँचाते थे।

भावार्थ– जिस तरह सूर्य वर्षा के रूप में हजार गुना जल लौटाने के लिए ही पृथ्वी से जल को भाप के रूप में ग्रहण करता है, उसी प्रकार राजा दिलीप अपने प्रजाजनों के ही कल्याण के लिए उनसे कर ग्रहण करते थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– भूत्यर्थम्भूत्यै इदं (च.तत्पु.'अर्थेन नित्य समासो विशेष्यलिङ्गता च, इस सूत्र से यह नित्य समास है।) अग्रहीत्ग्रह् + लङ् प्रथम ए.। सहस्रगुणम्सहस्रं गुणाः यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा (ब.व्री.,क्रि.वि.)। आदत्तेआ + दा + लट प्रथम ए.। (आ के योग में दा धातु आत्मनेपदी होती है यदि इसका अर्थ 'मुँह खोलना' न हो)।

छन्द– अनुष्टुप्।

अलङ्कार– अर्थान्तरन्यास।

सेना परिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम्।
शास्त्रे वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता।।19।।

अन्वय– सेना तस्य परिच्छेदः (आसीत्) शास्त्रेषु अकुण्ठिता बुद्धिःधनुषि आतता मौर्वी च (एतत्) द्वयम् एव अर्थसाधनम् (बभूव)।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप की बुद्धि तथा शौर्य सम्पन्नता का वर्णन

किया है।

अनुवाद– उस राजा दिलीप की सेना तो केवल उपकरण मात्र थी अर्थात् राजसी शोभा हेतु वे सेना रखते थे, अर्थसाधन हेतु तो केवल दो ही उपाय थे एक तो शास्त्रों में प्रवेश करने वाली प्रखर बुद्धि दूसरे धनुष पर चढ़ी हुई प्रत्यञ्चा।

भावार्थ– दिलीप की सेना प्रदर्शन के निमित्त उपकरण मात्र थी। परन्तु उसके अभीष्ट उद्देश्य को प्राप्त करने के तो दो ही साधन थे 1. शास्त्रों में प्रखर उसकी बुद्धि तथा 2. धनुष पर उसके द्वारा प्रत्यञ्चा का निरन्तर चढ़ाये रखना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– परिच्छदः–परिच्छाद्यते अनेन (परि + छिद् + णिच् + घ) इति। अर्थसाधनम्–अर्थस्य साधनं (षष्ठी तत्पुरुष) द्वयम्–द्वौ अवयवौ अस्य (द्वि + अयच्) इति। अकुण्ठिता–न कुण्ठिता (नञ् तत्पु.)। आतता–आ + तन् + क्त + टाप् (स्त्री.)।

छन्द – अनुष्टुप्।

तस्य संव‍ृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव।।20।।

अन्वय– संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च तस्य प्रारम्भाः प्राक्तनाः संस्काराः इव फलानुमेराः।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में राजा दिलीप के राज्य के सञ्चालन में मन्त्र का संरक्षण उनकी शासन व्यवस्था का मूल आधार प्रतिपादित किया गया है।

अनुवाद– जिस प्रकार वर्तमान कालिक फलों को देखकर मनुष्य के पूर्व जन्म के संस्कारों का अनुमान किया जाता है उसी प्रकार विकार, आकार तथा चेष्टा को गुप्त रखने वाले दिलीप राजा के कार्य सिद्ध हो जाने पर ही लोगों के द्वारा जाने जाते थे कि राजा ने इस कार्य को प्रारम्भ किया था।

भावार्थ– जिस तरह मनुष्यों को पूर्व जन्म में किये गये कर्मों के फलों की संस्कार की भांति अनुभूति होती है (सुख और दुःख के फल भोगने के बाद अपने द्वारा पूर्व जन्म में किये गये कर्मों के विषय में अनुमान लगा लेता है) उसी प्रकार गुप्त विचारधारा वाले एवं मुखाकृति से प्रकट किये बिना ही कार्य के निष्पन्न हो जाने पर ही अन्य लोगों द्वारा अनुमान लगाया जा सकता था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– संवृत.–संवृतः मंत्रः यस्य सः संवृतमंत्रः (ब.व्री.) तस्य। (गूढाकारेङ्गितस्य) आकारः च इङ्गितं च आकारेङ्गिते (द्वन्द्व), गूढ़े आकारेङ्गिते (ब.व्री.) तस्य अथवा गूढ़ः आकारः यस्य तत् गूढ़ाकारं (ब.व्री.), तादृषम् इङ्गितं यस्य सः गूढाकारेङ्गितः (ब.व्री.) तस्य। प्रारम्भः–प्रारभ्यन्ते इति (प्र+आ+रभ्+अ)। प्राक्तनः–प्राक्भवा–इति (प्राक+तन्+टच् = प्राक् + तन)। फलानुमेयाः–अनुमातुं योग्याः (अनु + मा + यत्) अनुमेयाः फलेन अनुमेयाः (तृ. तत्पु.)।

छन्द– अनुष्टुप्।

अलङ्कार – उपमा। इसके द्वारा राजा दिलीप की गुप्त विचार शक्ति का उल्लेख किया गया है।

जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृधनुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्।।21।।

अन्वय– सः अत्रस्तः आत्मानम् जुगोप। अनातुरः धर्मं भेजे, अगृध्नुः अर्थम् आददे, असक्तः सुखम् अन्वभूत्।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा राजा दिलीप के साम आदि उपायों को प्रयोग में लाये बिना निष्काम भावना से आत्मरक्षा आदि का कार्य करने का वर्णन किया गया है।

अनुवाद– वह राजा दिलीप निर्भय होते हुए भी अपनी रक्षा किया करते थे। नीरोग अर्थात् संकट रहित होते हुए भी वह निरन्तर धर्माचरण किया करते थे। लोभरहित होते हुए भी धनसंग्रह किया करते थे। आसक्तिरहित होकर वे सुखों का उपभोग किया करते थे।

भावार्थ— वह राजा दिलीप निर्भीक होकर अपने शरीर की रक्षा करता था। सहज भाव एवं स्वास्थ्य के नियम तथा नीति के अनुसार वह अपने शरीर की रक्षा में तत्पर रहता था। मानसिक क्लेष से रहित होकर उद्विग्न हुए बिना ही वह अपने धर्म का उत्तरदायित्व का पालन करता था। निर्लोभ होकर वह धन का संचय करता था तथा आसक्ति भाव से रहित होकर वह सभी राजसी सुखों का उपभोग किया करता था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— अत्रस्तः—न त्रस्तः (नञ् तत्पु.)। जुगोप—गुप् + लिट् प्रथम ए.। अनातुरः—न आतुरः (नञ् तत्पु.)। भेजे—भज् (आत्मने.) लिट् प्रथम ए.। अगृध्नुः—न गृध्नुः (नञ् तत्पु.)। गृध्नुः गर्धनशीलः (गृध् + नु)। आददे—आ + दा + लिट् प्रथम ए.। असक्तः—न सक्तः (नञ् तत्पु.)। सक्तः—सज् + क्त। अन्वभूत्—अनु + भू + लुङ् प्रथम ए.।

छन्द — अनुष्टुप्।

अलङ्कार — पुरुषार्थ चतुष्टय में से प्रथम तीनों की अहर्निश उपासना का वर्णन प्राप्त होता है साथ धर्म का स्थान सर्वोपरि स्थापित होता है।

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव।।22।।

अन्वय— ज्ञाने मौनं, शक्तौ क्षमा, त्यागे श्लाघाविपययः, (इत्थम्) तस्य गुणा गुणाऽनुबन्धित्वात् सप्रसवा इव (अभूवन्)।

प्रसङ्ग— प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के परस्पर विरोधि गुणों की एक साथ अवस्थिति (साहचर्य) का वर्णन किया है।

अनुवाद— विद्वान होते हुए भी मौन रहना, शक्ति सम्पन्न होते हुए भी अपकारी को क्षमादान करना, दानी होते हुए भी अभिमान न करना इत्यादि उस राजा दिलीप के ज्ञान आदि गुण अपने—अपने विरोधी गुणों के साथ रहते हुए सहोदर भाई के समान प्रतीत होते थे।

भावार्थ— राजा दिलीप विविध शास्त्रों के ज्ञान से सम्पन्न थे परन्तु उनमें आत्मविज्ञापन भाव बिल्कुल भी नहीं था। राजा दिलीप शक्ति सम्पन्न होते हुए भी क्षमावान थे अर्थात् अपराधियों को दण्ड देने, अपकार का प्रतिकार करने तथा राज्य के अन्तर्गत व्यवस्था स्थापन में पूर्णतः समर्थ एवं शक्ति सम्पन्न थे परन्तु अपनी शक्ति का वे दुरुपयोग नहीं करते थे। शरण में आये हुए के लिए क्षमावान थे। राजा दिलीप दानी और उदार थे लेकिन उनमें आत्म—प्रशंसा का भाव नहीं था। इस प्रकार राजा दिलीप में ये परस्पर विरोधी गुण—ज्ञान—मौन, शक्ति और क्षमा, त्याग और श्लाघा (प्रशंसा प्राप्त करने का भाव) का अभाव दिलीप के चरित्र में व्याप्त थे। दिलीप में इन गुणों की सहस्थिति का भाव यह प्रकट करता है कि मानों वे दोनों ही एक माता में दो बेटे (सहोदर) हों अर्थात् दिलीप में विरोधी गुणों की स्थिति सहोदरवत् थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— ष्लाघा—ष्लाघायाः विपर्ययः (षष्ठी तत्पुरुष)। गुणा—अनुबध्नन्ति इति (अनु + बन्ध् + इन) अनुबन्धिनः, तेषां भावः (अनुबन्धिन् + त्व) अनुबन्धित्वम्, गुणैः अनुबन्धित्वं (तृ.तत्पु.) तस्मात्। सप्रसवाः—समानः प्रसवः येषां ते (ब.व्री.)।

छन्द — अनुष्टुप्।

अलंकार — उपमा।

अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः।
तस्य धर्मरतेरासीद्व द्धत्वं जरसा विना।।23।।

अन्वय— विषयैः अनाकृष्टस्य विद्यानाम् पारदृष्वनः धर्मरतेः तस्य जरसा विना वृद्धत्वम् आसीत्।

प्रसङ्ग— प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के वयोवृद्धत्व नहीं होना प्रतिपादित किया है। किन्तु वैराग्यवृद्धत्व (संयम), विद्यावृद्धत्व (विद्वत्ता) तथा शीलवृद्धत्व (गंभीरता) का वर्णन किया गया

है।

अनुवाद– वे राजा दिलीप विषयों द्वारा आकृष्ट नहीं हुए, समस्त विद्याओं को पार तक देख लिया था अर्थात् सम्पूर्ण विद्याओं में प्रवीणता को प्राप्त कर चुके थे। धर्म में उनकी बहुत अभिरुचि रहा करती थी इस कारण वृद्धावस्था को प्राप्त किये बिना ही ज्ञान के कारण वृद्धत्व को प्राप्त कर लिया था।

भावार्थ– राजा दिलीप पूर्ण युवावस्था को प्राप्त थे परन्तु उनमें विषयों के प्रति आसक्ति नहीं थी। सभी विद्याओं वेदादि शास्त्रों में पारंगत होने से ज्ञानवृद्ध थे। उनमें धर्म के आचरण में विशेष अभिरुचि थी अर्थात् वे धर्मवृद्ध थे। इस प्रकार उनमें वृद्धावस्था के बिना ही वृद्धत्व प्राप्त था। अर्थात् वे वैराग्यवृद्ध, ज्ञानवृद्ध तथा धर्मवृद्ध थे। उनमें युवावस्था के अवगुणों का परिहार सर्वथा हो चुका था। वृद्धावस्था के प्रौढ़भाव युवावस्था में ही जागृत हो चुके थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– अनाकृष्टस्य–न आकृष्टः अनाकृष्टः (नञ् तत्पु.) तस्य। पारदृष्वनः=पारं दृ ष्टवान् इति पारदृष्वा (उपपद.) तस्य। धर्मरतेः–धर्मे रतिः यस्य सः धर्मरतिः (ब.व्री.) तस्य। जरसा–जरा + तृतीया ए. (जरायाः जरसादेषः)। वृद्धत्वम्–वृद्धस्य भावः कर्म वा (वृद्ध + त्व)।

छन्द– अनुष्टुप्।

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।24।।

अन्वय– प्रजानाम् विनयाधानात्, रक्षणात्, भरणात्, अपि सः पिता (आसीत्), तासां पितरः केवलं जन्महेतवः (आसन्)।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप द्वारा प्रजा का पालन–पोषण पिता के समान किये जाने का वर्णन किया है।

अनुवाद– समस्त प्रजावर्ग को नीतिशास्त्र आदि शिक्षा देने के कारण, रक्षा करने के कारण, भरण–पोषण करने के कारण वस्तुतः वे राजा दिलीप ही उनके पिता थे और उन प्रजाओं के पिता तो केवल जन्म देने वाले ही थे।

भावार्थ– उसने (राजा दिलीप) ने अपने प्रजाजनों में विनय आदि गुण पैदा करने के लिए उनके षिक्षण की व्यवस्था की। उनकी रक्षा करने का दायित्व भी ग्रहण किया। अपने प्रजाजनों के भरण–पोषण के उत्तरदायित्व का निर्वाह किया। इस कारण वह अपनी प्रजा का वास्तव में पिता था। उनके प्रजाजनों के माता–पिता तो केवल जन्म देने के कारण ही माता–पिता (जनक) बने हुए थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– विनयाधानात्विनयस्य आधानं विनयाधनं (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मात्। प्रजानाम्–प्रकर्षेण जायन्ते इति (प्र + जन् + ड) प्रजाः तासाम्। पिता–पाति इति (पा + तृ)। जन्महेतवः–जन्मनः हेतवः (षष्ठी तत्पुरुष)।

छन्द– अनुष्टुप्।

स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान्परिणेतुः प्रसूतये।
अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः।।25।।

अन्वय– दण्ड्यान् स्थित्यै दण्डयतः, प्रसूयते परिणेतुः मनीषिणः तस्य अर्थकामौ अपि धर्म एव आस्ताम्।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के अर्थ और काम धर्म से युक्त थे, इसका वर्णन किया है।

अनुवाद– वह, राजा दिलीप केवल शान्ति रखने के लिये ही अपराधियों को दण्ड देते थे, केवल पितृ–ऋण से मुक्त कराने वाली सन्तान की प्राप्ति हेतु उन्होंने विवाह किया था, इस प्रकार उस मनीषी राजा के अर्थ और काम भी धर्म ही थे।

भावार्थ— राजा दिलीप अपने शासन की स्थिति ठीक बनाये रखने के लिए राज्य में लोक मर्यादा स्थापित करने के लिए दण्डित किये जाने योग्य अपराधियों को दण्ड देना तथा सन्तान उत्पत्ति के लिए पत्नी का परिग्रहण करना उस बुद्धिमान के लिए अर्थ और काम भी धर्म के ही कार्य थे। लोक व्यवस्था को सुचारू रूप देने के लिए ही राजा दिलीप अपराधियों को दण्ड देता था, अपने किसी अधिकार प्रदर्शन अथवा मिथ्या दम्भवश उन्हें दण्डित नहीं करता था। यदि वह अपराधियों को दण्डित नहीं करता, तो निश्चय ही लोक व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो जाती और अराजकता अशान्ति और असन्तोष पैदा हो जाता। सन्तानोत्पत्ति के लिए ताकि राजवंश अविच्छिन्न बना रहे–काम अर्थात् विवाहादि कार्य में प्रवृत्त होता था। अतः उसके दोनों ही अर्थपरक और कामपरक कार्य कत्तर्व्य पालन के रूप में उसके लिए धर्म का ही रूप था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— दण्डयान् = दण्डम् अर्हन्ति इति (दण्ड् + य) दण्ड्याः तान्। दण्डयतः–दण्ड् + णिच् + शतृ षष्ठी ए.। परिणेतुः–परिणयति (पति पत्नी को अग्नि के चारों ओर ले जाता है) इति (परि + णी + तृ) परिणेता तस्य। मनीषिणः–इषाः अस्य असित इति (इषा + इन्) इषी, मनसः इषिणः मनीषिणः (षष्ठी तत्पुरुष) (पृषोदरादि होने के कारण अस् का लोप) अथवा मनीषा (=शास्त्रोत्था बुद्धिः) अस्य अस्ति इति (मनीषा + इन्) तस्र मनीषिणः। अर्थकामौ–अर्थः चः कामः च (द्वन्द्व)। आस्ताम्–अस् + लङ् प्रथम. द्वि.।

विशेष— कवि का कथन है कि अपराध के अनुसार दण्ड आदि की व्यवस्था करना धर्म है। श्राद्ध–तर्पण आदि क्रियाओं की पूर्ति के लिये पुत्रोत्पादन करना धर्म है। इस प्रकार राजा दिलीप के अर्थ और काम रूपी पुरुषार्थ भी धर्ममूलक ही थे। इस कारण वह राजा धर्मोत्तर था जैसा कि महर्षि गौतम ने बताया है ''न पूर्वाह्णमध्यंदिनापराह्णानफलान्कुर्यात् यथाशक्ति धर्मार्थकामेभ्यस्तेषु धर्मोत्तरः स्यात्।'' इति।

छन्द– अनुष्टुप्।

दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम्।
संपद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्।।26।।

अन्वय— स यज्ञाय गां दुदोह, मघवा सस्याय दिवम् (दुदोह) (एवम्) उभौ सम्पद्विनिमयेन भुवनद्वयम् दधतुः।

प्रसङ्ग— प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप और इन्द्र में पारस्परिक आदान–प्रदान के कारण उनकी मित्रता का वर्णन किया है।

अनुवाद— राजा दिलीप ने यज्ञ करने के लिये पृथ्वी का दोहन किया तथा इन्द्र ने धान्य के लिए आकाश का दोहन किया। इस प्रकार राजा दिलीप तथा राजा इन्द्र ये दोनों अपनी–अपनी सम्पत्ति का विनिमय करके दोनों लोकों का पालन किया।

भावार्थ— राजा ने यज्ञ के लिए पृथ्वी का दोहन किया। राजा दिलीप ने अपनी प्रजा से कर के रूप में संग्रहीत धन को यज्ञकार्यों, भलाई के कार्यों में लगाकर, पृथ्वी को अर्थशून्य कर दिया। दूसरी तरफ इन्द्र ने यज्ञ–याग–आदि से प्रसन्न होकर आकाश को दुहकर (मेघों से वर्षा करा के) स्वर्ग को रिक्त कर दिया। इस प्रकार इन दोनों के द्वारा ही अपने–अपने लोक की सम्पत्ति का आदान–प्रदान करके दोनों लोको का भली–भाँति पोषण होने लगा। देवों को हवि और दिलीप की प्रजा को वर्षा का जल प्राप्त हुआ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— यज्ञाय (यज्ञं कर्तुम्) तथा सस्याय (सस्यं वर्धरितुम्)–अप्रयुज्यमान तुमुन्नन्त के कर्म में चतुर्थी। गाम–गो + द्वितीय ए.। दुदोह–दुह् + लिट् प्रथम ए.। सम्पद्विनिमयेन–सम्पदः विनिमयः सम्पद्विनिमयः (षष्ठी तत्पुरुष) तेन। भुवनद्वयम्–द्वौ अवयवौ अस्य इति (द्वि + अयच्) द्वयम्, भुवनयोः = द्वयं (ष. तत्पु.)। दधतुः–धा + लिट् प्रथम द्वि.।

छन्द— अनुष्टुप्।

न किलानुययुस्तस्य राजानो रक्षितुर्यशः।
व्यावृत्ता यत्परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता।।।27।।।

अन्वय— राजानः रक्षितुः तस्य यशः न अनुययुः किल यत् तस्करता परस्वेभ्यः व्यावृत्ता श्रुतौ स्थिता (बभूव)।

प्रसङ्ग— प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के राज्य में चोरी (डकैती) तथा चोरों का भय नहीं होना वर्णित किया है।

अनुवाद— अन्य राजागण रक्षा करने वाले उस राजा दिलीप के यश का अनुकरण न कर सके, क्योंकि राजा दिलीप के राज्य में चोरी दूसरों के धन से हट कर केवल सुनने में ही रह गई थी।

भावार्थ— अन्य देषों के राजा इस रक्षक के यश को प्राप्त नहीं कर सके थे, उसने राजा दिलीप ने दूसरों के धन की चोरी करना नितान्त समाप्त कर दिया था। तस्करी (चोरी) तो मात्र कानों से सुनने तक ही रह गयी थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— रक्षितुः—रक्षति इति (रक्ष् + तृ) रक्षिता तस्य। अनुययुः—अनु + या + लिट् प्रथम ब.। तस्करता—तस्करस्य भावः कर्म वा (तस्कर + तल्)—परस्वेभ्यः—परेषां स्वानि (षष्ठी तत्पुरुष) तेभ्यः। व्यावृत्ता—वि + आ वृ + क्त (स्त्री.)।

छन्द— अनुष्टुप्।

द्वेष्यऽपि संमतः शिष्टस्तस्यार्तस्य यथौषधम्।
त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता।।28।।

अन्वय— षिष्टः द्वेष्यः अपि आर्त्तस्य औषधं यथा तस्य सम्मतः (आसीत्) दुष्टः प्रियः अपि उरगक्षता अंगुली इव (तस्य) त्याज्यः (अभूत्)।

प्रसङ्ग— प्रस्तुत श्लोक में राजा दिलीप को सज्जन व्यक्ति प्रिय थे और दुष्ट व्यक्ति अप्रिय थे। यह वर्णन किया गया है।

अनुवाद— सज्जन पुरुष शत्रु होते हुए भी राजा दिलीप को उसी प्रकार प्रिय था जिस प्रकार औषधि कड़वी होते हुए भी रोगी को प्रिय होती है तथा कोई प्रिय व्यक्ति यदि दुष्ट होता था तो राजा उसे उसी प्रकार दूर कर देता था, जिस प्रकार विषधर साँप के द्वारा काट लिये जाने पर अंगुली को लोग काटकर फेंक देते हैं, दूर कर देते हैं।

भावार्थ— जिस तरह रोग से पीड़ित व्यक्ति के द्वारा औषधि (कटु होने पर भी) सेवन किये जाने योग्य होती है, उसी तरह उसके द्वारा सज्जन दुष्टता से युक्त होने पर भी सेवा किये जाने योग्य भिन्नता करने योग्य होता था परन्तु सर्पदंष से दूषित बनी हुई विषयुक्त अंगुली की तरह दुष्ट व्यक्ति समाज को दूषित करने वाला व्यक्ति प्रिय होने पर उसके द्वारा त्यागने योग्य होता था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— षिष्ट = शास् + क्त। द्वेष्यः—द्वेष्टुं योग्यः (द्विष् + य)। आर्त्तस्य—आ + ऋ + क्त (षष्ठी ए.) औषधम्—औषधिः एव (औषधि + (स्वार्थे) अण्)। सम्मतः—सम् + मन् + क्त। उरगक्षता—उरसा गच्छति इति उरगः (उपपद.), क्षण् (हिंसायां) + क्त स्त्री क्षता, उरगेण क्षता (तृ. तत्पु.) त्याज्यः—त्यक्तुं योग्यः (त्यज् + ण्यत्)।

तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना।
तथाहि सर्वे तस्यासन्परार्थैकफला गुणाः।।29।।

अन्वय— नूनम् वेधाः तम् महाभूतसमाधिना विदधे, तथाहि तस्य सर्वे गुणाः परार्थैकफलाः आसन्।

प्रसङ्ग— प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप की परोपकारिता का वर्णन किया है।

अनुवाद— निष्चय ही ब्रह्मा ने जिस सामग्री से पंचमहाभूतों का निर्माण किया, उसी सामग्री से राजा दिलीप को बनाया था। यही कारण है कि उसके सम्पूर्ण गुणों का फल परोपकार के लिये ही था।

भावार्थ– कवि वर्णन करता है कि विधाता ने उसे उस राजा दिलीप को महापुरुषों के निर्माण में प्रयुक्त की जाने वाली विशेष सामग्री से निष्चय ही बनाया था क्योंकि उसके सभी गुण दूसरों की भलाई के निमित्त ही थे। अर्थात् वह अपने सभी साधनों में अपनी सभी सम्पत्ति से, सभी गुणों से और सभी पदार्थों से प्रजारंजन प्राप्त करना ही उनका सफल उपयोग और परोपकार ही मानता था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– वेधा–विदधाति इति। महाभूतसमाधिना–महान्ति भूतानि महाभूतानि (कर्म.) तेषां समाधिः महाभूतसमाधिः (षष्ठी तत्पुरुष) तेन। समाधिः–समाधीयते इति (सम् + आ + धा + कि) (अच्छी प्रकार मिलाना, समाधीयते अनेन इति वा (कारण सामग्री)। विदधे–वि+धा (आत्मने.) + लिट् प्रथम ए.। परार्थे.–परस्य अर्थः परार्थः (षष्ठी तत्पुरुष) एकं फलम्–एकफलं (कर्म.), परार्थः एव एकफलं येषां ते (ब. व्री.)।

छन्द– अनुष्टुप्।

अलंकार– उपमा।

स वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागराम्।
अनन्यशासनामुर्वीं शशासैकपुरीमिव।।30।।

अन्वय– सः वेलावप्रवलयाम् परिखीकृतसागराम् अनन्यशासनाम् उर्वीम् एकपुरीम् इव शशास।

प्रसङ्ग– प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के चक्रवर्तित्व का वर्णन किया है।

अनुवाद– वह राजा दिलीप समुद्रतट रूपी रक्षा की दीवार से युक्त समुद्ररूपी परिखा से घिरी हुई, किसी दूसरे द्वारा शासन न की जाती हुई पृथ्वी को एक नगरी के समान शासित करता था।

भावार्थ– समुद्र तक विस्तृत और समुद्र द्वारा बनायी गई खाई से युक्त एवं अन्य किसी व्यक्ति द्वारा शासन न की जाती हुई सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक नगर के शासन की भाँति वह दिलीप एक छत्र शासन करता था। अर्थात् बहुत अधिक विस्तृत भू–भाग पर राजा दिलीप सुविधापूर्वक आसानी से एक छत्र शासन करता था। मानो वह एक नगरी का ही शासन कर रहा हो। उसके शासित क्षेत्र में पूर्णतः शान्ति एवं सुव्यवस्था थी। कहीं भी अनुषासनहीनता एवं नियम कानून का उल्लंघन दिखाई नहीं देता था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी– वेलाव–प्राणि एव वलयः (वप्राणि वलयाः एव वा) इति वप्रवलयाः (कम.), वेलाः एव वप्रवलयाः यस्या सा वेलावप्रवलया (ब.व्री.) ताम्। परिखी.–परितः खाताः (परि + खन् ड) परिखा, न परिखाः अपरिखाः (नञ् तत्पु.)। अ–परिखा परिखाः सम्पद्यमानाः कृताः इति परिखीकृताः (परिखा + च्वि + कृ + क्त), परिखीकृताः सागराः यस्याः सा परिखीकृतसागराः (ब.व्री.) ताम्। अन्यस्य शासनम् अन्यशासनम्, न विद्यते अन्यशासनम् यस्याः सा अनन्यशासना, ताम् अनन्यशासनाम्। एका च असौ पुरी एकपुरी ताम् एकपुरीम्।

छन्द– अनुष्टुप्।

अलङ्कार– उपमा।

6.3 सारांश

रघुवंश महाकाव्यम् के इस सर्ग में महाकवि कालिदास ने सर्वप्रथम शिव और पार्वती की वन्दना करने के उपरान्त रघुवंशियों के सद्‌गुणों का उल्लेख किया है और उनके गुणों से प्रेरित होकर ही प्रस्तुत काव्य को रचने की बात कही है। इसके बाद कथासूत्र का आरम्भ इस प्रकार होता है।

वैवस्वत मनु के वंश में दिलीप नाम के राजा हुए, जिन्होंने बल तथा बुद्धि से सारी पृथ्वी को अधिकार में कर लिया। वे बड़े दयालु, उदार और गुणशाली थे। उनके राज्यकाल में प्रजा नियमों पर चलती थी, अपराधियों को उचित दण्ड मिलता था तथा चोरी, डकैती आदि नहीं होते थे। उनके बहुत–सी रानियाँ थीं, पर मगधवंश में उत्पन्न सुदक्षिणा नाम की रानी से ही वे अपने आप को स्त्रीयुक्त समझते थे। उनकी

इच्छा थी कि सुदक्षिणा के गर्भ में उन जैसा ही पुत्र उत्पन्न हो, पर समय बीतता जा रहा था और उनकी इच्छा पूरी नहीं हो रही थी। इसलिए वे राज्य का भार मन्त्रियों को सौंपकर अपने कुलगुरु वसिष्ठ के आश्रम में रथ पर चढ़कर, पत्नी सहित पहुँचे।

6.4 बोध–प्रश्न

1. रघुवंशी राजाओं की विशेषता का वर्णन कीजिए।
2. निम्न श्लोक का सप्रसंग अनुवाद एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी लिखिए–

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेष्वरौ।।1।।

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्वचाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।।2।।

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांषुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः।।3।।

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।।7।।

शैषवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।8।।

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवष्छन्दसामिव।।11।।

आकारसदृषप्रज्ञः प्रज्ञया सदृषागमः।
आगमैः सदृषारम्भ आरम्भसदृषोदरः।।15।।

सेना परिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम्।
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता।।19।।

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकायेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव।।20।।

दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम्।
संपद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्।।26।।

6.5 सहायक ग्रंथ

1. रघुवंश महाकाव्यम्, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई।
2. रघुवंश महाकाव्यम्, (प्रथम सर्ग), डॉ. जगन्नाथ पाण्डेय, जयपुर।
3. कालिदास, चन्द्रबली पाण्डे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
4. रघुवंश, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस 1965।

6.6 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी इकाई से स्वयं खोजें।

इकाई – 7

रघुवंशम् (प्रथम सर्ग)

की श्लोक संख्या 31 से 60 तक श्लोकों का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद, भावार्थ, व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी, काव्यगत वैशिष्ट्य–छन्द, अलंकार आदि, सूक्ति व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

संस्कृत महाकवियों में कालिदास का अनुपम व्यक्तित्व एवं कृतित्व सर्वाधिक प्रशंसनीय है। रघुवंश महाकाव्य कालिदास की सर्वश्रेष्ठ कृति है अत एव कालिदास को रघुकार नाम से भी व्यवहृत किया गया है। रघुवंश महाकाव्य की लोकप्रियता तथा व्यापकता का परिचय इस महाकाव्य पर लिखित टीकाओं के अस्तित्व से विधिवत् जाना जा सकता है। रघुवंश के प्रथम सर्ग का विधिवत् अध्ययन करवाना प्रमुख उद्देश्य है किन्तु इसके साथ–साथ महाकवि कालिदास की कविता में माधुर्य, प्रसाद, पदों की सरसता, अर्थ का सौष्ठव एवम् अलङ्कारों का मञ्जुल प्रयोग प्रदर्शित कर काव्य के हृदय पक्ष को उजागर करना भी प्रमुख उद्देश्य का अभिन्न अंग है।

7.1 प्रस्तावना

महाकवि कालिदास संस्कृत कविता के अनुपम श्रृंगार हैं। आपके काव्य में मानवीय भावनाओं का चित्रण सहज रीति से प्रकट हुआ है। प्रकृति चित्रण के आप अनुपम कवि हैं। आपकी कविता में प्रकृति स्पष्ट रूप से मुखरित होती है रघुवंश के प्रथम सर्ग में अपनी विनम्रता का प्रदर्शन करते हुए महाकवि कालिदास ने रघुवंशी राजाओं की विशेषताओं पर विशद प्रकाश डाला है तथा सन्तति रहित राजा दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ वशिष्ठ आश्रम जाते हैं। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि गुरुदेव की असीम कृपा से उन्हें मनोवाञ्छित समाधान प्राप्त हो जायेगा। वसिष्ठ के आश्रम तक जाने वाले मार्ग का वर्णन प्रकृति चित्रण तथा ग्रामवासियों के साथ संक्षिप्त वार्तालाप आदि के माध्यम से अत्यन्त हृदयग्राही हो गया है।

7.2 रघुवंश के 31 से 60 श्लोकों तक अनुवाद, भावार्थादि

तस्य दाक्षिण्यरुढेन नाम्ना मगधवंशजा।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा।।31।।

अन्वय – तस्य मगधवंशजा दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना अध्वरस्य दक्षिणा इव सुदक्षिणा इति पत्नी आसीत्।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा राजा दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – यज्ञ की पत्नी दक्षिणा के समान मगध वंश में उत्पन्न दया दाक्षिण्य आदि के कारण प्रसिद्ध

सुदक्षिणा नाम वाली उन राजा दिलीप की पत्नी थी।

भावार्थ – उस राजा दिलीप की पत्नी मगध कुल में उत्पन्न हुई थी। यज्ञ की पत्नी दक्षिणा अपने दक्षिणा गुण विशेष के कारण प्रसिद्ध है, उसी की □ाँति राजा दिलीप की पत्नी का नाम सुदक्षिणा प्रसिद्ध था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – मगधवंशजामगधानां वंशः (षष्ठी तत्पुरुष), तस्मिन् जाता (उपपद.)। दाक्षिण्यरूढेनदक्षिणस्य □ावः दाक्षिण्यं (दक्षिण + ष्यन्), तेन रूढं दाक्षिण्यरूढं (त. तेन)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – उपमा।

कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि।
तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः।।32।।

अन्वय – वसुधाधिपः महति अवरोधे (सति) अपि मनस्विन्या तया, लक्ष्म्या च आत्मानं कलत्रवन्तं मेने।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा राजा दिलीप के अनेक पत्नियाँ होने पर □ी सुदक्षिणा के ही प्रिय होने का प्रतिपादन किया गया है।

अनुवाद – वह राजा दिलीप रनिवास में अनेक रानियों के होते हुए □ी उस मनस्विनी सुदक्षिणा तथा लक्ष्मी के द्वारा ही अपने को स्त्री वाला समझता था।

भावार्थ – राजा दिलीप अपने अन्तःपुर वर्ग में अनेक सुन्दरियों के होने पर □ी उस स्वा□िमानिनी सुदक्षिणा और राज्यलक्ष्मी के द्वारा ही अपने आप को पत्नी से संयुक्त मानते था। तात्पर्य यह है कि राजा दिलीप के अन्तःपुर में अन्य अनेक सुन्दरियाँ थीं, परन्तु वह उन्हें पत्नी रूप में मान्यता नहीं देता था वह राज्य लक्ष्मी तथा सुदक्षिणा को ही अपनी पत्नी रूप में अपनाने उसका पति कहलाने में गौरव का अनु□व करता था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – वसुधाऽधिपःवसूनि दधाति इति वसुधा (उपपद.), अधिकं पाति इति अधिपः (प्रादि तत्पु.) वसुधायाः अधिपः (ष. तत्पु.), अवरोधे महति सतियहाँ पर अनादर में सति सप्तमी वि□क्ति है, यह वाक्य खण्ड निरपेक्ष है। अवरोधअवरुध्यन्ते अत्र (जहाँ स्त्रियाँ, सुरक्षित रूप में रोकी जाती हैं।) मनस्विन्याप्रशस्तं मनः अस्याः अस्ति इति मनस्विनी (मनन् + विन् स्त्री) तया। कलत्रवन्तम्कलत्रम् अस्य अस्ति इति कलत्रवान् (कलत्र + मत्) तम्। मेनेमन् + लिट् प्रथम ए.।

छन्द – अनुष्टुप्।

तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुकः।
विलम्बितफलैः कालं स निनाय मनोरथैः।।33।।

अन्वय – सः आत्मानुरूपायाम् तस्याम् (सुदक्षिणाम्) आत्मजन्मसमुत्सकः (सन्) विलम्बितफलैः मनोरथैः कालम् निनाय।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप ने सुदीर्घकाल तक सुदक्षिणा से पुत्रप्राप्ति की प्रतीक्षा की।

अनुवाद – राजा दिलीप ने स्वानुरूप पत्नी सुदक्षिणा में अपने समान पुत्र की अ□िलाषा करते हुये देर से फल प्राप्त होने वाले मनोरथों से युक्त समय को व्यतीत किया।

भावार्थ – अपने ही रूप और गुण सम्पदा से संयुक्त उस सुदक्षिणा से पुत्र–उत्पत्ति रूपी फल प्राप्ति के मनोरथ से उत्सुकतापूर्वक उस राजा दिलीप ने बहुत समय व्यतीत किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आत्मानुरूपायाम्अनुगतं रूपं यस्याः सा अनुरूपा (ब.व्री.), आत्मनः अनुरूपा आत्मानुरूपा (षष्ठी तत्पुरुष), तस्याम्। आम. – आत्मनः (=स्वस्य) जन्म आत्मजन्म (षष्ठी तत्पुरुष), (पुत्ररूपेण) आत्मजन्मनि समुत्सकः (स.तत्पु.) (2) आत्मनः (=स्वस्मात्) जन्म यस्य असौ आत्मजन्मा

(=पुत्रः) (ब.व्री.), आत्म जन्मनि (=पुत्रे) समुत्सुक (स. तत्पु.)। विलम्बितः – विलम्बः संजातः अस्य इति विलम्बितं (विलम्बितं)। (विलम्ब + इतच्), विलम्बितं फलं येषां ते विलम्बितफलाः (ब.व्री.) तैः। मनोरथैः मनसः रथाः मनोरथाः (ष. तत्पु.), तैः।

छन्द – अनुष्टुप्।

संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे।।34।।

अन्वय – तेन सन्तानार्थाय विधये स्व□ुजात् अवतारिता जगतः गुर्वी धूः सचिवेषु निचिक्षिपे।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास कहते हैं कि पुत्रप्राप्ति के लिये अनुष्ठान हेतु प्रवृत्त राजा दिलीप ने मन्त्रियों को राज्य □ार समर्पित कर दिया।

अनुवाद – उन राजा दिलीप के द्वारा सन्तान–प्राप्ति के लिये अनुष्ठान करने हेतु पृथ्वी का □ारी बोझ अपनी □ुजाओं से उतार कर मन्त्रियों को सौंप दिया गया अर्थात् मन्त्रियों ने कार्य□ार ग्रहण किया।

भावार्थ – उस राजा दिलीप ने सन्तान प्राप्त करने के लिए यज्ञयागादि का अनुष्ठान इत्यादि का सम्पादन करने के लिए अपने कंधे से उतार कर संसार के शासन करने के □ारी उत्तरदायित्व को मंत्रियों को सौंप दिया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सन्तानार्थाय (1) सन्तानस्य अर्थः संतानार्थः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मै, (2) सन्तानः अर्थः यस्य सः सन्तानार्थः (ब.व्री.) तस्मै (यहाँ पर विधि का विशेषण है)। विधयेविधीयते इति (वि + धा + किः) तस्मै (विधये विधि कर्त्तुम् यहाँ अप्रयुज्यमान अतुमुन्नन्त के कम में चतुर्थी।) स्व□ुजात्स्वस्य □ुजः स्व□ुजः (ष. तत्पु.) तस्मात्। अवतारिताअव + तृ + णिच् + क्त (स्त्री)। गुर्वीगुरु + ङीष्।

छन्द – अनुष्टुप्।

अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया।
तौ दम्पती वसिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम्।।35।।

अन्वय – अथ प्रयतौ तौ दम्पती पुत्रकाम्यया विधातारम् अभ्यर्च्य गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमम् जग्मतुः।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास कहते हैं कि पुत्रप्राप्ति की कामना से राजा दिलीप अपने गुरु वसिष्ठ के आश्रम में चले गये।

अनुवाद – इसके अनन्तर पवित्रात्मा वे दोनों पति–पत्नी राजा दिलीप तथा रानी सुदक्षिणा पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से ब्रह्मा की विधिवत् पूजा करके कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में गये।

भावार्थ – इसके बाद राज्य □ार को मंत्रियों को सौंपकर पवित्र आत्मा चरित्र वाले दोनों पति और पत्नी राजा दिलीप और महारानी सुदक्षिणा पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से ब्रह्मा जी की पूजा–अर्चना करके कुल–गुरु वसिष्ठ के आश्रम को गये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – पुत्रकाम्यया (1) पुत्रस्य काम्या (ष. तत्पु.) तया, (2) पुत्रम् आत्मनः इच्छति इति पुत्रकाम्यति (पुत्र + काम्यच्), 'पुत्रकाम्य (नामधातु) + (□ावे) अ' इति पुत्रकाम्या, तया। विधातारम्विदधाति इति (वि + धा + तृ) विधाता तम्। अभ्यर्च्यअ□ि + अर्च् + ल्यप्। प्रयतौप्रयम् + क्त प्रथमा द्वि.। तौसः च सा च (एकशेषद्वन्द्व)। दम्पतीजाया च पतिः इति जायापती, दम्पती वा (द्वन्द्व) (यहाँ पर जाया को जम् या दम् आदेश हो जाता है। इसमें पति का पहले प्रयोग होना चाहिए किन्तु राजदन्त आदि शब्दों में परिगणित होने के कारण जाया का प्रयोग पहले होता है। दम्पती की व्युत्पत्ति दम (=गृह) तथा पति से की जा सकती है। तब इसका अर्थ होगा घर का मालिक। वेद में इस का एकवचन में प्रयोग होता है किन्तु लौकिक साहित्य में इसका प्रयोग द्विवचन में ही होता है। तब इसका अर्थ होगा घर के दो मालिक अर्थात् पति और पत्नी।

छन्द – अनुष्टुप्।

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ।
प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव।।36।।

अन्वय – स्निग्धगम□ीरनिर्घोषम् एकम् स्यन्दनम् आस्थितौ तौ प्रावृषेण्यम् पयोवाहम् विद्युदैरावतौ इव (जग्मतुः)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा का एक रथ पर बैठकर गुरु वसिष्ठ आश्रम के लिए प्रस्थान का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – वे दोनों राजा दिलीप तथा रानी सुदक्षिणा मधुर और गम□ीर शब्द करने वाले एक रथ पर आरूढ़ होकर चले, तो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो वर्षा ऋतु के मेघ पर बिजली के साथ ऐरावत आरूढ़ होकर जा रहा हो।

भावार्थ – वे दोनों सुदक्षिणा और दिलीप प्रिय और मधुर मंद ध्वनि करने वाले रथ पर एक साथ ही वर्षा काल वाले मेघ पर विद्युत् और ऐरावत अ□मातंग की □ाँति संग–संग विराजमान थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – स्निग्धगम□ीरनिर्घोषम् – स्निग्धः च असौ गम□ीरः च स्निग्धगम□ीरः (कर्म.), तादृशः निर्घोषः यस्य सः स्निग्धगम□ीरनिर्घोषः (ब.व्री.) तम्। स्यन्दनः–स्यन्दते इति (तेजी से चलता हैं)। प्रावृषेण्यम् – प्रावृषि (वर्षर्तौ) □वः (प्रावृष् + एण्य) तम्। पयोवाहम् – पयांसि वहति इति पयोवाह (उपपद.) तम्। विद्युदै.–विशेषेण द्योतते इति विद्युत (प्रादि तत्पु.), इराः (जलानि) सन्ति अस्मिन् इति इरावान् (इरा + मतुप्), इरावति □वः ऐरावतः (इरावत् + अण्), विद्युत् च ऐरावतः च विद्युदैरावतौ (द्वन्द्व)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – उपमा।

मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरः सरौ।
अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव।।37।।

अन्वय – (पुनः कथम□ूतौ तौ?) आश्रमपीडा मा □ूत् इति (हेतोः) परिमेयपुरः सरौ तु अनु□ावविशेषात् सेनापरिवृतौ इव (स्थितौ)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा राजा दिलीप के गुरु वसिष्ठ के आश्रम में बिना सेना के ही प्रस्थान का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – आश्रम में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो इस कारण राजा दिलीप थोड़े से अनुचरों को साथ में लिये हुए थे परन्तु वे अपने अलौकिक तेज के कारण सेना में घिरे हुये से प्रतीत होते थे।

भावार्थ – आश्रमवासियों को किसी □ी □ाँति पीड़ा न हो, इस विचार से बहुत ही कम संख्या में (सीमित संख्या) में सेवकों को उन्होंने सुदक्षिणा और राजा दिलीप ने अपने साथ लिया। परन्तु यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि उनके साथ आने वाले सेवक अपनी अतिरिक्त तेजस्विता से उस राज–परिवार को चारों ओर से घेरे हुए थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आश्रमपीडा – आश्रमस्य पीड़ा (षष्ठी तत्पुरुष)। मा□ूत् – मा+ + □ू + (आशीरर्थ) लुङ् प्रथम ए.व. (माङ् के योग में आशी के अर्थ में लुङ् लकार होता है और अट् नहीं होता)। परिमेयपुरः सरौ – परिमायतुं योग्याः इति (परि + मा + यत्) परिमेयाः, पुरः सरन्ति इति पुरः सरा (गति तत्पु.), परिमेयाः पुरस्सराः ययोः तौ (ब.व्री.)। अनु□ाव.–विशेषः च असौ अनु□ावः अनु□ावविशेषः (कर्म.) जन्मात् अथवा अनु□ावस्य विशेषः (अतिशयः) अनु□ावविशेषः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मात्। सेनापरिवृत्तौ – परितः वृतः परिवृतः (परि + वृ + क्त), सेनया परिवृतः सेनापरिवृतः (तृ.तत्पु.) तौ।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – उत्प्रेक्षा।

सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः।
पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः।।38।।

अन्वय – (पुनः कथम्□ूतौ तौ?) सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धि□ः पुष्परेणूत्किरैः आधूतवनराजि□ः वातैः सेव्यमानौ (जग्मतुः)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास कहते हैं कि राजा दिलीप मार्ग में सुखद स्पर्श वाली वायु, शाल वृक्ष के रस की गंध से युक्त फूलों की सुगन्ध का अनु□व करते हुये वसिष्ठ आश्रम गये।

अनुवाद – स्पर्श मात्र से ही सुख प्रदान करने वाली, शालवृक्षों के गोंद से सुगन्धित तथा पुष्पों के पराग से परिपूर्ण और वनवृक्षों को धीरे–धीरे हिलाने वाली वायु ने जाते हुए राजा–रानी की मार्ग में सेवा की।

भावार्थ – कुलगुरु वसिष्ठ के आश्रम को जाते हुए सुदक्षिणा और दिलीप सुखस्पर्श वाली; शालवृक्षों की गंध से सुगन्ध युक्त बनी हुई; पुष्पों के पराग कणों को बिखेरने वाली तथा वनराजियों को मन्दकम्पन देने वाली वायु के द्वारा सुसेवित थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सुखस्पर्शैं – सुखम् अस्य अस्ति इति सुखः (सुख + अ), सुखः (शीतलत्वात् प्रियः) स्पर्शः येषां ते सुखस्पर्शाः (ब.व्री.) तैः। शाल. – शालेभ्यः निर्यासाः शालनिर्यासाः (षष्ठी तत्पुरुष), तेषां गन्धः शालनिर्यासगन्धः (षष्ठी तत्पुरुष) सः अस्ति येषु ते शालनिर्यासगन्धिनः (शालनिर्यागसन्ध + इन्) तैः। पुष्प.=पुष्पाणां रेणवः पुष्परेणवः (ष. तत्पु.), तान् उत्किरन्ति (=क्षिपन्ति) इति पुष्परेणूत्किराः (उपपद.) तैः। आधूत.–ईषद् धूताः (प्रादि तत्पु.), वनस्य राजयः वनराजयः (षष्ठी तत्पुरुष) आधूताः वनराजयः यैः ते आधूतवनराजयः (ब.व्री.) तैः। सेव्यमानौ – सेव् + (कमणि) यक् = शानच् प्रथम द्विः।

छन्द – अनुष्टुप्।

मनोभिरामाः शृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः।
षड्जसंवादिनीः केका द्विधा भिन्नाः शिखण्डिभिः।।39।।

अन्वय – (पुनः कथम्□ूतौ तौ?) रथनेमिस्वनोन्मुखैः शिखण्डि□ः द्विधा □िन्ना षड्जसंवादिनीः मनो□िरामाः केकाः शृण्वन्तौ (तौ जग्मतुः)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास कहते हैं कि रथ के पहिये के हाल की घरघराहट को मेघ की ध्वनि समझकर मोर बोलने लगे।

अनुवाद – रथ के पहियों से निकलते हुए गम्□ीर शब्द को मेघ–ध्वनि समझते हुए ऊपर को मुख उठाये हुए मयूरों की षड्ज स्वर के समान गम्□ीर एवं मनोहर (केका) वाणी को सुनते हुए वे दोनों मार्ग में चले जा रहे थे।

भावार्थ – रथ की नेमि से उत्पन्न ध्वनि को सुनकर ऊपर को अपने सिर को उठाये हुए मयूरों के द्वारा शुद्ध और अशुद्ध (स्पष्ट तथा अस्पष्ट) दो रूप वाली छः स्थानों से उत्पन्न होने वाली एवं मन को आकर्षित करने वाली, मोर के कण्ठ से उत्पन्न वाणी को सुनते हुए वे दोनों सुदक्षिणा और दिलीप वसिष्ठ के आश्रम की ओर गये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – रथनेमिस्वनोन्मुखैः – रथस्य नेमी (=चक्रप्रान्तौ) रथनेमी (षष्ठी तत्पुरुष), तयोः स्वनः रथनेमि स्वनः (षष्ठी तत्पुरुष) उद्गतं मुखं येषां ते उन्मुखाः (ब.व्री.), रथनेमिस्वनेन (हेतौ तृतीया) उन्मुखाः रथनेमिस्वनोन्मुखाः (तृ.तत्पु.) तैः। शिखण्डि□ः–शिखण्डः (मयूरपुच्छ) अस्ति अस्य सः शिखण्डी (शिखण्डः + इन्) तैः। द्विधा – द्वि + (रिधार्थे) धा। □िन्नाः – □िद् + क्त द्वितीया ब.। मनोऽ□िरामाः – अ□िरमतो मनो यासु ताः अ□िरामाः मनसः अ□िरामाः (षष्ठी तत्पुरुष) षड्ज.–षड्भ्यः (=स्थानेभ्यः) जातः षड्जः (उपपद.) संवदितुं शीलम् अस्ति आसाम् इति संवादिन्यः षड्जेन संवादिन्यः षड्जसंवादिन्य (तृ. तत्पु.) ताः। केकाः – के (=मूर्धनि) कायन्ति (=ध्वन्ति) इति (उपपद.)। श्रृण्वन्तौ–श्रु + शतृ प्रथमा द्वि.।

छन्द – अनुष्टुप्।

परस्पराक्षिसादृश्यमदूरोज्झितवर्त्मसु।
मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु।।40।।

अन्वय – (पुनः कथम्□ूतौ तौ?) मयूरोज्झितवर्त्मसु स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु मृगद्वन्द्वेषु परस्पराक्षिसादृश्यम् पश्यन्तौ (जग्मतुः)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के रथ को (कूतूहल के कारण) मृग (हिरण) के जोड़े देख रहे थे इसका वर्णन किया गया है।

अनुवाद – मार्ग से थोड़ी दूर पर स्थित रहने वाले, रथ पर टकटकी लगाकर देखने वाले हरिणों के जोड़ों में वे दोनों एक दूसरे के नेत्र की समानता देखते हुए चले जा रहे थे।

भावार्थ – समीप आकर और मार्ग छोड़कर महारानी सुदक्षिणा और राजा दिलीप के रथ पर दृष्टि गढ़ा कर देखने वाले मृगमृगी के मिथुन जोड़े के नेत्रों में अपने एक दूसरे के मृग के नेत्रों में राजा दिलीप के नेत्रों के रूप सादृश्य को तथा मृगी के नेत्रों में महारानी सुदक्षिणा के नेत्रों के रूप सादृश्य को देखते हुए वे दोनों सुदक्षिणा और दिलीप मुनि वसिष्ठ के आश्रम को चले जा रहे थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अदूरोज्झितवर्त्मसु – न दूरम् अदूरम् (नञ् तत्पु.), अदूरं यथा स्यात् तथा उज्झिततम् अदूरोज्झितं (कम.) अदूरोज्झितं वर्त्म यैः तानि अदूरोज्झितवत्मानि (ब.व्री.) तेषु। स्यन्दना.– आ समन्तात् बृद्धाः आबद्धाः (प्रादि.), स्यन्दने आबद्धाः (स. तत्पु.), स्यन्दनाबद्धाः दृष्टयः यैः तानि स्यन्दनाबद्धदृष्टीनि (ब.व्री.) तेषु। मृगद्वन्द्वेषु–मृग्यः च मृगाः च इति मृगा (एकशेष.), तेषां द्वन्द्वानि (षष्ठी तत्पुरुष समास) तेषु। परस्परा.–सदृशस्य □ावः सादृश्यम्, अक्ष्णः सादृश्यम् अक्षिसादृश्यं (षष्ठी तत्पुरुष), (कमव्यतिहारे द्योत्ये) परः पर इति परस्परः तस्य परस्परस्य, परस्परस्य अक्षिसादृश्यं परस्पराक्षिसादृश्यं (ष.तत्पु. षष्ठी तत्पुरुष)। पश्यन्तौ – दृश् + शतृ प्रथमा द्वि.।

छन्द – अनुष्टुप्।

श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम्।
सारसैः कलनिर्ह्लादैः क्वचिदुन्नमिताननौ।।41।।

अन्वय – (पुनः कथम्□ूतौ तौ?) श्रेणीबन्धात् अस्तम्□ाम् तोरणस्रजम् वितन्वद्भिः कलनिर्ह्रादैः सारसैः क्वचित् उन्नमिताननौ (जग्मतुः)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा ने वसिष्ठ आश्रम में जाते हुये मार्ग में अव्यक्त ध्वनि वाले सारसों को देखने का वर्णन किया है।

अनुवाद – पंक्ति बाँध कर सुन्दर शब्द करते हुए तथा आकाशमार्ग से उड़ते हुए सारस पक्षियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो वे बिना खम्□ के सजी हुई वन्दनमालायें हों जिन्हें देखने के लिये ऊपर की ओर मुख किये हुए वे दोनों चले जा रहे थे।

भावार्थ – पंक्तिबद्ध आधार–रहित तोरण–माला सी बनाये हुये अव्यक्त मधुर स्वर करने वाले सारस पक्षियों को जहाँ–तहाँ मार्ग में ऊपर को मुख उठाकर देखते हुए महारानी सुदक्षिणा और राजा दिलीप वसिष्ठ के आश्रम को चले जा रहे थे।

व्याकरण – क्व (कस्मिन् इति अर्थे) किम् + सप्तमी = क्व+ अत्। श्रेणी. – श्रेण्याः बन्धः श्रेणीबन्धः (षष्ठी तत्पुरुष.) तस्मात् (हेतौ पंचमी)। अस्तम्□ाम् – न विद्यते स्तम्□ः यस्याः सा अस्तम्□ा (ब.व्री.) ताम्। तोरण. – तोरणस्य स्रक् तोरणस्रक् (षष्ठी तत्पुरुष) ताम्। वितन्वद्भिः – वि + तन् + शतृ तृतीया व.। कलनिर्ह्लादैः – कलः निर्ह्लादः येषां ते कलानिर्ह्लादाः (ब.व्री.) तैः। सारसैः – करण में तृतीया। उन्नमिता. – उन्नमिते आनने यस्यां तौ (ब.व्री.)।

विशेष – साधारणतया यह परम्परा है कि किसी विशिष्ट व्यक्ति के आने पर वन्दन वार सजाये जाते हैं,

स्तम□ों में मालायें आदि लगा कर बहिर्द्वार का निर्माण किया जाता है। यहाँ पर कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि राजा के आने पर पंक्तिबद्ध होकर उड़ते हुए सारस पक्षी ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो उनके स्वागत में बिना खम□ों के बने हुए द्वार पर मालायें लटक रही हैं।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – यहाँ पर व्यञ्जक शब्द के अ□ाव में □ी उत्प्रेक्षा मानने के कारण गम्योत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

पवनस्यानुकूलत्वात्प्रार्थनासिद्धिशंसिनः।
रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैरस्पृष्टालकवेष्टनौ ।।42।।

अन्वय – (पुनः कथम□ूतौ तौ?) प्रार्थनासिद्धिशंसिनः पवनस्य अनुकूलत्वात् तुरगोत्कीर्णैः रजो□ः अस्पृष्टालकवेष्टनौ (जग्मतुः)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा के रथ के साथ उन दोनों की मनोरथ सफलता को सूचित करने वाली अनुकूल वायु का वर्णन करते हैं।

अनुवाद – प्रार्थना की सफलता को सूचित करने वाली वायु की गति अनुकूल होने के कारण घोड़े के खुरों के द्वारा उठाई गई धूलि रानी सुदक्षिणा के बालों तथा राजा दिलीप की पगड़ी को स्पर्श न कर सकी।

भावार्थ – मनोरथ की सिद्धि पूर्ण होने की सूचक पवन के अनुकूल दिशा में बहने के कारण घोड़े के पैरों की गति से उठी हुई धूल का महारानी सुदक्षिणा के केश तथा राजा दिलीप की शिरस्त्राण पगड़ी इत्यादि स्पर्श नहीं पा रहे थे, धूल से गंदे नहीं हो रहे थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अनुकूलत्वात्–अनुकूलस्य □ाव अनुकूलत्वं (अनुकूल + त्व) तस्मात्। प्रार्थना – प्रार्थनायाः सिद्धिः प्रार्थनासिद्धिः (षष्ठी तत्पुरुष) (षष्ठी तत्पुरुष) तां शसितु शीलम् अस्य सः प्रार्थना सिद्धिशंसी (उपपद.) तस्य। तुरगो.–तुरगैः उत्कीर्णानि तुरगोत्कीर्णानि (तृ.तत्पु.) तैः, उत्कीर्ण–उत् + कृ + क्त। अस्पृष्टान स्पृष्टम् अस्पृष्टं (नञ् तत्पु.) अलकाः च वेष्टनं च (द्वन्द्व) अस्पृष्टम् अलकावेष्टनं ययोः तौ (ब.व्री.)।

छन्द – अनुष्टुप्।

विशेष – पवन का अनुकूल होना राजा के मनोरथ सिद्धि की सूचना दे रहा है।

सरसीष्वरविन्दानां वीचिविक्षोभशीतलम्।
आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वासानुकारिणम्।।43।।

अन्वय – (पुनः कथम□ूतौ तौ?) सरसीषु वीचिविक्षो□शीतलम् स्वनिःश्वासानुकारिणम् अरविन्दानाम् आमोदम् उपजिघ्रन्तौ (जग्मतुः)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास राजा दिलीप के रास्ते में सरोवर की लहरों से उठने वाली आनन्दप्रद सुगन्ध का वर्णन करते हैं।

अनुवाद – सरोवरों की लहरों के सम्पर्क से शीतल अपने निश्वास का अनुकरण करने वाले कमलों की सुगन्धि को सूँघते हुए वे दोनों चले जा रहे थे।

भावार्थ – (वसिष्ठ के आश्रम को जाने वाले मार्गों के प्रान्तर् में स्थित) सरोवरों में तरंगों के स्पर्श से शीतल बनी हुई परस्पर एक दूसरे (सुदक्षिणा और दिलीप) की निःश्वास का अनुकरण करने वाली कमलों की सुगन्ध को सूँघते हुए (सुदक्षिणा और राजा दिलीप) (वसिष्ठ के आश्रम की ओर चले जा रहे थे)।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – वीचिविक्षो□शीतलम् – वीचीनां विक्षो□ः वीचिविक्षो□ः (ष.तत्पु.) तेन शीतलः वीचिविक्षो□शीतलः (तृ.तत्पु.) तम्। स्वनिःश्वासाः – स्वस्य निःश्वासः, स्वनिः श्वासः (ष.तत्पु.) तम् अनुकर्त्तु। शीलम् अस्य सः स्वनिः श्वासानुकारी (उपपद.) तम्। उपजिघ्रन्तौ – उप + शतृ प्रथम द्वि.।

छन्द – अनुष्टुप्।

ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु यज्वनाम्।
अमोघाः प्रतिगृह्णन्तावर्घ्यानुपदमाशिषः।।44।।

अन्वय–आत्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु ग्रामेषु यज्वनाम् अमोघाः आशिषः अर्घ्यानुपदम् प्रतिगृह्णन्तौ (तौ जग्मतुः)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के मार्ग में स्वयं दान किये हुये स्तम□ों से चिह्नित गाँवों में विधिपूर्वक यज्ञ कर चुके श्रोत्रिय ब्राह्मणों ने आशीर्वाद प्रदान करने का वर्णन किया।

अनुवाद – स्वयं दान में दिये हुए यज्ञ के खम□ों से चिह्नित गाँवों में अर्घ्य प्राप्त करने के अनन्तर यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों के असफल न होने वाले आशीषों को लेते हुए वे दोनों चले जा रहे थे।

भावार्थ – यूप चिह्न से युक्त यज्ञानुष्ठान के उपरान्त दान में दिये गये ग्रामों के ब्राह्मणों के शु□ आशीष वचनों से अ□िनन्दित होते हुए अर्घ्य आदि द्वारा आदर सत्कार ग्रहण करते हुये वे दोनों (रानी सुदक्षिणा और राजा दिलीप) अपने कुलगुरु वसिष्ठ के आश्रम को चले जा रहे थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आत्मविसृष्टेषु – आत्मना विसृष्टाः आत्मविसृष्टाः (तृ.तत्पु.) तेषु। यूपचिह्नेषु – यूपाः एव चिह्नानि येषां ते ते यूपचिह्नाः (ब.व्री.) तेषु। यज्वनाम् – विधिना इष्ट्वान् (यज् – ङ्वनिप्) इति यज्वा तेषाम्। अमोघाः – न मोघाः (नञ् तत्पु.)।

छन्द – अनुष्टुप्।

हैयङ्गवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान्।
नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम्।।45।।

अन्वय – हैयङ्गवीनम् आदाय च उपस्थितान् घोषवृद्धान् वन्यानाम् मार्गशाखिनाम् नामधेयानि पृच्छन्तौ (तौ जग्मतुः)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के लिये गाँवों के ग्वालों, बड़े–बूढ़ों द्वारा लाये गये मक्खन का वर्णन किया है।

अनुवाद – स्वच्छ नवीन मक्खन को लेकर आये हुए गाँव के वृद्ध गोपों से मार्ग में पड़ने वाले जगंली वृक्षों के नाम पूछते हुए वे दोनों चले जा रहे थे।

भावार्थ – सद्यनिर्मित मक्खन लेकर उपस्थित होने वाले बड़े–बूढ़े ग्वालों से वन में मार्ग के आस–पास उगने वाले वृक्षों के नाम पूछते हुए महारानी सुदक्षिणा और राजा दिलीप वसिष्ठ के आश्रम को चले जा रहे थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – हैयङ्गवीनम् – दुह्यते इति दोहः (दुग्धम्), गवाँ दोहः गोदोहः (ष.तत्पु.), ह्यः (पुर्वेद्युः) □वः ह्यस्तन, ह्यस्तनः गोदोहः ह्यस्तनगोदोहः ह्योगोदोहः वा (कर्म. मध्यमपदलोपी कर्मत्र वा.), ह्यस्तनगोदोहस्य ह्योगोदोहस्य विकारः ;ह्यस्तनगोदोह अथवा हयोगोदोह + खञ्द्धनिपातन से ह्यस्तनगोदोह को या ह्योगोदोह को हियंगु आदेश हुआ और हैयङ्गवीन रूप बना। आदाय – आ + दा + ल्यप्।

छन्द – अनुष्टुप्।

काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव।।46।।

अन्वय – व्रजतोः शुद्धवेषयोः तयोः हिमनिर्मुक्तयोः चित्राचन्द्रमसोः इव योगे (सति) काऽपि अ□ख्या आसीत्।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने हिम के छँट जाने से चित्रा नक्षत्र एवं चन्द्रमा के मेल की उज्ज्वल शोभा के सदृश सुदक्षिणा एवं दिलीप की शोभा का वर्णन किया है।

अनुवाद – जाते हुए शुद्ध सुन्दर श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित उन राजा दिलीप तथा रानी सुदक्षिणा की हेमन्त ऋतु के समाप्त हो जाने के अनन्तर चित्रा नक्षत्र तथा चन्द्रमा के योग होने पर जैसी शो□ा प्रतीत होती है, ऐसी कथनीय मार्ग में उन दोनों की □ी शो□ा प्रतीत हो रही थी।

भावार्थ – शुद्ध वेश धारण करने वाले एवं वसिष्ठाश्रम को जाने वाले उन दोनों (सुदक्षिणा और राजा दिलीप) की शो□ा कोहरे से मुक्त हुए चित्रा नक्षत्र और चन्द्रमा के संयोग से उत्पन्न शो□ा के समान अकथनीय थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – हिमेन निर्मुक्तौ हिमनिर्मुक्तै तयोः हिमनिर्मुक्तयोः, चित्रा च चन्द्रमाः च चित्राचन्द्रमसौ तयोः चित्राचन्द्रमसोः। ब्रजतोःबृज् + शत् + षष्ठी द्वि.। योगे – युग + □ावे घञ् सप्तमी ए.। शुद्धवेषयोः – शुद्धः वेषः ययोः शुद्धवेषौ (ब.व्री.) तयोः। तयोः – सा च सः च तौ (एकशेष) तयोः।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – उपमा।

तत्तद्भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन्प्रियदर्शनः।
अपि लङ्घितमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः।।47।।

अन्वय – बुधोपमः प्रियदर्शनः □ूमिपतिः पत्न्यै तत् तत् दर्शयन् लंघितम् अपि अध्वानम् न बुबुधे।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप द्वारा मार्ग में अपनी पत्नी को अद्□ुत दृश्य दिखलाते हुये दिलीप की यात्रा का समाप्त होने का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – विद्वान् एवम् प्रियदर्शन राजा दिलीप अपनी पत्नी को मार्ग की ि□न्न–ि□न्न वस्तुयें दिखलाते हुए पीछे छोड़े हुए मार्ग को □ी न जान सके।

भावार्थ – विद्वानों के समान सुन्दर आकृति वाले राजा को अपनी पत्नी सुदक्षिणा को मार्ग के पेड़–पौधे सरोवर के कमल तथा पशु–पक्षी आदि को दिखाते हुए (इन सबका वर्णन करते हुए) मार्ग की यात्रा पूर्ण करते हुये □ी उन्हें मालूम नहीं हो सकी।

कहने का तात्पर्य यह है कि वसिष्ठाश्रम तक के मार्ग की यात्रा में उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ। मार्ग के स□ी प्राकृतिक उपादानों का वर्णन करते हुए यात्रा सुखद थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – प्रियम् दर्शनम् यस्य सः प्रियदर्शन। बुधोपमः – बुधः उपमा यस्य सः (ब.व्री.)। □ूमिपतिः – पाति इति पतिः, □ूमेः पति (ष.तत्पु.)। दर्शयन्दृश् + णिच् + शतृ + प्रथम ए.

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा

स दुष्प्रापयशाः प्रापदाश्रमं श्रान्तवाहनः।
सायं संयमिनस्तस्य महर्षेर्महिषीसखः।।48।।

अन्वय – दुष्प्रापयशाः श्रान्तवाहनः महिषीसखः सः सायं संयमिनः तस्य महर्षेः आश्रमम् प्रापत्।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप एवं रानी सुदक्षिणा के साथ महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचने का वर्णन किया है।

अनुवाद – दुर्ल□ यश वाले तथा थके हुए घोड़ों वाले राजा दिलीप पत्नी सुदक्षिणा के साथ सायंकाल महर्षि वसिष्ठ के आश्रम पर पहुँचे।

भावार्थ – दुर्ल□ कीर्तिवाला एवं थके हुए घोड़ों वाला महारानी सुदक्षिणा सहित वह राजा दिलीप नियम संयम से रहने वाले उस ऋषिश्रेष्ठ के आश्रम में सायंकाल में पहुँचा

व्याकरणात्मक टिप्पणी – दुष्प्रापयशाः–दुःखेन प्राप्तुं शक्य दुष्प्रायं (दुस् + प्र आप् + खल्), दुष्प्रापं यशः

यस्य सः (ब.व्री.)। श्रान्त – श्रम + क्त। श्रान्त. – वाहयति इति वाहनं (वह् + णिच् + ल्युट्), श्रान्तानि वाहनानि यस्य सः (ब.व्री.)। महषीसखः – महिष्याः सखा (ष.तत्पु.)। संयमिनः – संयमः अस्य अस्ति इति संयमी (संयम + इन्) तस्य। महर्षेः – महान् च असौ ऋषिः च महर्षिः (कर्म) तस्य। प्रापत् – प्र + अप् + लुङ् प्रथम ए.।

छन्द – अनुष्टुप्।

वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः।
पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः।।49।।

अन्वय – वनान्तरात् उपावृत्तैः समित्कुशफलाहारैः अदृश्याग्निप्रत्युद्यातैः तपस्वि□ः पूर्यमाणम्।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास संध्याकाल में अग्निहोत्र के लिये तपस्वियों से युक्त वसिष्ठ आश्रम का वर्णन करते हैं।

अनुवाद – दूसरे–दूसरे वनों के मध्य से लौटते हुए समिधा, कुश और फल लिये हुए अदृश्य अग्नि से स्वागत किये जाते हुए तपस्वियों से वह वसिष्ठ का आश्रम पूर्ण हो रहा था।

भावार्थ – अन्य–अन्य वनों से लौटकर आने वाले समिधा, कुश और फल इत्यादि लाने वाले यज्ञ की अदृश्य अग्नियों के द्वारा अ□िनन्दित तपस्वियों से महर्षि वसिष्ठ का आश्रम □रा हुआ था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – समिधश्च कुशाश्च फलानि च समित्कुशफलानि, समित्कुशफलानि आहर्तुम् शीलम् येषाम् ते समित्कुशफलाहराः, तैः समित्कुशफलाहरैः। द्रष्टुम् योग्याः, न दृश्याः अदृश्याः अृदश्याश्च ते अग्नयः अदृश्याग्न्यः, अदृश्याग्नि□ः प्रत्युद्याताः इति अदृश्याग्निप्रत्युद्याता, तैः अदृश्याग्निप्रत्युद्यातैः। तपः अस्ति येषाम् ते तपस्विनः तैः तपस्वि□ः। वनान्तरात्अन्यत् वनं वनान्तरं (कर्म.) तस्मात् (यह मयूर–व्यंस्क आदि की तरह का नित्य समास है। नित्यसमास का विग्रह नहीं होता। उसका तथा कथित विग्रह केवल □ाषान्तर होता है। अन्तर शब्द □िन्न अर्थ को प्रकट करता है।) उपावृत्त – उप + धा + वृत्त + क्त।

छन्द – अनुष्टुप्।

आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः ।
अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः।।50।।

अन्वय – (पुनः किम्□ूतम् आश्रमम्?) नीवार□ागधेयोचितैः उटजद्वाररोधि□ः (अत एव) ऋषिपत्नीनाम् अपत्यैः इव मृगैः आकीर्णम्।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास आश्रम में पाले गये पुत्र के समान मृगों के धान के दाने खाने का वर्णन किया है।

अनुवाद – नीवार नामक धान्य के □ाग को पाने वाले ऋषियों की कुटियों का द्वार रोकने वाले ऋषिपत्नियों द्वारा पुत्रों के समान पाले गये मृगों से वह आश्रम □रा हुआ था।

भावार्थ – नीवार के जंगली सवां के दानों के □ाग को प्राप्त करने के अभ्यस्त एवं पर्ण कुटीर के द्वार पर ही ऋषि पत्नियों के द्वारा अपनी सन्तान की □ाँति पाले–पोषे मृगों से व्याप्त उस वसिष्ठ ऋषि के आश्रम को देखा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – नीवार□ागधेयोचितैः□ागः एव □ागधेयः (□ाग + (स्वार्थे) धेय–□ाग, रूप तथा नाम से स्वार्थ में धेय प्रत्यय होता है अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता), नीवाराणां □ागधेयः नीवार□ागधेयः (ष.तत्पु.), तस्य उचिताः नीवार□ागधेयोचिताः (ष.तत्पु.) तैः। उटज – उटजानां द्वाराणि उटजद्वाराणि (ष.तत्पु.), तानि रोद्धुं शीलम् एषां ते उटजद्वाररोधिनः, (उपपद.) तैः। ऋषि. – ऋषीणां पत्न्यः ऋषिपत्न्यः (ष.तत्पु.) तासाम्। आकीर्ण – आ + कृ + क्त।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंकार – उपमा।

सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।
विश्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम्।।51।।

अन्वय – आलवालाम्बुपायिनाम् विहङ्गानाम् विश्वासाय मुनिकन्या□ः सेकान्ते तत्क्षणोज्झितवृक्षकम् (आश्रमं प्रापत्)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने थावलों में जल पीने वाले पक्षियों एवं मुनि कन्याओं द्वारा आश्रम के वृक्षों को सींचने का वर्णन किया है।

अनुवाद – क्यारी (थांवलों) के पानी को पीने वाले पक्षियों के विश्वास के लिए सींचने के अनन्तर मुनिकन्याओं के द्वारा तत्क्षण छोड़े गये वृक्षों वाले आश्रम में राजा दिलीप रानी सुदक्षिणा सहित पहुँचे।

भावार्थ – महारानी सुदक्षिणा और दिलीप ने उस आश्रम को देखा जिसमें मुनिकन्याओं ने सिंचाई के उपरान्त आल–वाल पर स्थित जल बिन्दुओं को पीने वाले पक्षियों के विश्वास के लिए उसी समय पेड़–पौधों की समीपता छोड़ दी थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उस चासौ क्षणश्च तत्क्षणः तत्क्षणे उज्झिता इति तत्क्षणोज्झिताः, ह्रस्वाः वृक्षाः वृक्षकाः, तत्क्षणोज्झिताः वृक्षका येषु सः तत्क्षणोज्झितवृक्षकः तम् तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्। आलवाला. – आ (समन्तात्) लवं (जल लवं) आलाति (गृह्णाति) इति आलवाल (आ + लव + ला + क) (उपपद.), तेषु अम्बु आलवालाम्बु (स.तत्पु.) तत् पातु शीलम् एषां ते आलवालाम्बुपायिनः (उपपद.) तेषाम्। विहङ्गानाम् – विहायसा विहायसि वा गच्छति (खच् प्रत्यय विहायस् को विह तथा उपपद समास) इति विहंगाः तेषाम्।

छन्द – अनुष्टुप्।

आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु निषादिभिः।
मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजाङ्गणभूमिषु ।।52।।

अन्वय – आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु उटजाङ्गण□ूमिषु निषादि□ः मृगैः वर्तितरोमन्थम् (आश्रमं प्रापत्)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा तृण धान्यों वाले पर्णशालाओं के चौक में आराम से बैठे हरिणों के जुगाली किये जाने का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – धूप के चले जाने पर एकत्रित करके रखे गये नीवर धान्यों वाले कुटियों के आँगन प्रदेश में बैठे हुए मृगों द्वारा पागुर किये जाते हुए वसिष्ठ के आश्रम को पहुँचे।

भावार्थ – सूर्यास्त पर जहाँ नीवार धान्यों को एक स्थान पर एकत्र कर दिया गया है तथा पर्ण कुटीरों के आंगन की □ूमि पर बैठे हुए हिरणों के द्वारा जुगाली की जा रही है; ऐसे वसिष्ठ {षि के आश्रम को सुदक्षिणा सहित दिलीप ने देखा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उटजानाम् अङ्गण□ूमयः इति, उटजाङ्गण□ूमयः, तासु उटजाङ्गण□ूमिषु। वर्तितः रोमन्थः यस्मिन् सः वर्तितरोमन्थः तम् वर्तितरोमन्थम्। आतपा.– आ (समन्तात्) तापयति इति आतपः (प्रादि समास), तस्य अत्ययः आतपात्ययः (ष. तत्पु.) तस्मिन् संक्षिप्ताः (स.तत्पु.), तादृशाः नीवारा यासुः ताः आतपात्ययसंक्षिप्तनीवाराः (ब.व्री.)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अभ्युत्थिताग्निपिशुनैरतिथीनाश्रमोन्मुखान्।
पुनानं पवनोद्धूतैर्धूमैराहुतिगन्धिभिः।।53।।

अन्वय – अभ्युत्थिताग्निपिशुनैः पवनोद्धूतैः आहुतिगन्धि□ः धूमैः आश्रमोन्मुखान् अतिथीन् पुनानम्।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने आश्रम में यज्ञ की अग्नि में मंत्र बोलकर डाले हुए

हवनीय द्रव्य की गन्ध वाले धुएँ का वर्णन किया है।

अनुवाद – प्रज्वलित अग्नि की सूचना देने वाले, हवा के द्वारा उड़ाये जाते हुए आहुति गन्ध वाले धुएँ से आश्रम की ओर आने वाले अतिथियों को पवित्र करने वाले आश्रम में वे दोनों पहुँचे।

भावार्थ – प्रज्वलित अग्नियों के सूचक; वायु के द्वारा चारों ओर फैलायी हुई यज्ञ की आहुतियों की सुगन्ध ा से युक्त धुएँ के द्वारा आश्रम की ओर आने वाले अतिथियों को पवित्र करने वाले आश्रम को सुदक्षिणा सहित दिलीप ने देखा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आहुतेः गन्धः आहुतिगन्धः, सः एषाम् अस्ति इति आहुतिगन्धिनः, तैः, आहुतिगन्धि ा□ः। उद्‌गतं मुखं येषां, ते उन्मुखाः, आश्रमस्य उन्मुखाः इति आश्रमोन्मुखाः, तान् आश्रमोन्मुखान्। अभ्यु. – अ□ितः उत्थिताः अभ्युत्थिता (प्रादि.), अभ्युत्थिताः च ते अग्नयः अभ्युत्थिताग्नयः (कर्म.), तेषां पिशुनाः अभ्युत्थिताग्निपिशुनाः (ष.तत्पु.) तैः। पवनो. – पवनेन उद्धृताः पवनोद्धृताः (तृ.तत्पु.) तैः।

छन्द – अनुष्टुप्।

अथ यन्तारमादिश्य धुर्यान्विश्रामयेति सः।
तामवारोहयत्पत्नीं रथादवततार च।।54।।

अन्वय – अथ सः यन्तारम् 'धुर्यान् विश्रामय' इति आदिश्य, ताम् पत्नीम् रथात् अवारोहयत् अवततार च।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा आश्रम में पहुँचने के बाद राजा दिलीप का रथ से उतरने का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – इसके अनन्तर राजा दिलीप 'घोड़ों को विश्राम कराओ' ऐसा सारथी को आदेश देकर स्वयम् रथ से उतरे तथा पत्नी सुदक्षिणा को □ी उतारा।

भावार्थ – इसके बाद उसने 'घोड़ों को विश्राम कराओ' ऐसा सारथी को आदेश देकर उस अपनी पत्नी सुदक्षिणा को रथ से उतारा और वह स्वयं □ी उतरे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – धुर्यान् – धुरं वहन्ति इति धुर्याः (धुर् + यत्) तान्। विश्रामय – (विश्रमय वा = विनीतश्रमान् कुरु) = वि श्रम् + णिच् + लोट् मध्यम ए. (यहाँ पर 'मिताह्रस्वः' से ह्रस्व विकल्प से होगा)। यन्तारम् – यच्छति इति यन्ता (यम् + तृच्) तम्। आदिश्य – आ + दिश् + ल्यप्।

छन्द – अनुष्टुप्।

तस्मै सभ्याः सभार्याय गोप्त्रे गुप्तमेन्द्रियाः।
अर्हणामर्हते चक्रर्मुनयो नयचक्षुषे ।।55।।

अन्वय – सभ्याः गुप्ततमेन्द्रियाः मुनयः स□ार्याय गोप्त्रे अर्हते नयचक्षुषे तस्मै अर्हणाम् चक्रुः।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास राजा दिलीप का आश्रम के मुनियों के द्वारा पूजा स्वागत करने का वर्णन करते हैं।

अनुवाद – सज्जन तथा जितेन्द्रिय मुनियों ने प्रजा की रक्षा करने वाले, योग्य तथा नीतिशास्त्र रूपी चक्षु वाले उस राजा दिलीप का पत्नी सहित स्वागत किया।

भावार्थ – आश्रमवासी श्रेष्ठ आचरणशील एवं इन्द्रियसंयमी मुनियों, तपस्विजनों ने धर्म की रक्षा करने वाले एवं अपनी योग्यता से पूजनीय नीतिज्ञ उस राजा दिलीप का अपनी पत्नी सहित सम्मान किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सभ्याः – स□ायां साधवः (स□ा + य)। गुप्त. – इमानि एषाम् अतिशयेन गुप्तानि गुप्ततमानि गुप्ततमानि (गुप्त + तम्) तादृशानि इन्द्रियाणि येषां ते गुप्ततमेन्द्रियाः (ब.व्री.)। स□ार्याय – □ार्यया सह वर्तमानः स□ार्यः (ब.व्री.) तस्मै।

छन्द – अनुष्टुप्।

विशेष – श्लोक में प्रयुक्त 'सभ्याः' विशेषण मुनिजनों के लोक व्यवहार के ज्ञान को सूचित करता है।

विधेः सायंतनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम्।
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम् ।।56।।

अन्वय – सः सायन्तनस्य विधेः अन्ते स्वाहया (अन्वासितः) हवि□ुजम् इव अरुन्धत्या अन्वासितम् तपोनिधिम् ददृशे।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक मे महाकवि कालिदास ने सायंकाल के अनुष्ठान के समाप्त होने पर अरुन्धती सहित गुरु वसिष्ठ का दर्शन करने का वर्णन किया है।

अनुवाद – उस राजा दिलीप ने सायंकालिक विधि के अनन्तर स्वाहा से युक्त अग्नि के समान अरुधन्ती के साथ बैठे हुए तपोनिधि महर्षि वसिष्ठ का दर्शन किया।

भावार्थ – उसने (राजा दिलीप ने) सायंकाल में जाप यज्ञादि सम्पादित करने के अन्त में, पास में बैठी हुई, अरुन्धती सहित वसिष्ठ को बैठे हुए ठीक उसी प्रकार देखा जैसे यज्ञाग्नि के साथ (उसकी प्रिया) स्वाहा देवी शो□ा दे रही हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – हविः □ुनक्ति इति हवि□ुक्, तम् हवि□ुजम्। सायन्तनस्य – सायम्□वः इति (सायं + तुट् + ट्युल्) इति सायन्तनः तस्य। अन्वासितम् – अनु + आस् + (कमणि) क्त। तपोनिधिम् – तपसां निधिः (ष.तत्पु.) तम्।

छन्द – अनुष्टुप्।

विशेष – अग्नि एवं स्वाहा की उपमा से अरून्धती का वसिष्ठ की नित्य अनुगामिनी होना तथा वसिष्ठ का अरून्धती के बिना अपूर्ण होना द्योतित करता है।

तयोर्जगृहतुः पादान्राजा राज्ञी च मागधी।
तौ गुरुर्गुरुपत्नी च प्रीत्या प्रतिननन्दतुः ।।57।।

अन्वय – मागधी राज्ञी राजा च तयोः पादान् जगृहतुः गुरुपत्नी गुरुश्च तौ प्रीत्या प्रतिननन्दतुः।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने रानी सुदक्षिणा एवं राजा दिलीप द्वारा सपत्नीक गुरु का पादा□िनन्दन प्रणाम करने का वर्णन किया है।

अनुवाद – मगधराज पुत्री रानी सुदक्षिणा तथा राजा दिलीप ने उन दोनों के अर्थात् गुरु तथा गुरुपत्नी अरुन्धती के चरणों को स्पर्श किया और गुरु तथा गुरुपत्नी ने प्रसन्न होकर उन दोनों को आशीर्वाद दिया।

भावार्थ – मगध कुल में उत्पन्न होने वाली उस महारानी सुदक्षिणा और राजा दिलीप ने उन दोनों के अरुन्धती और वसिष्ठ के चरणों को स्पर्श किया। गुरु वसिष्ठ और गुरु पत्नी अरुन्धती ने तदुपरान्त प्रेमपूर्वक उन दोनों के प्रति अपने आशीष वचनों से अपने हृदय की प्रसन्नता को प्रकट किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – मागधी – मगधानां (देशविशेषाणां) राजा मागधः, तस्य अपत्यं स्त्री मागधी (मागध + ङीप्)। राज्ञी – राजन् = ङीप्। तयोः – सा (अरुन्धती) च सः (वसिष्ठः) च तौ (एक शे.) तयोः। जगृहतुः – गुह् + लिट् प्रथम द्वि.।

छन्द – अनुष्टुप्।

तमातिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमम्।
पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः।।58।।

अन्वय – मुनिः आतिथ्यक्रियाशान्तरथक्षो□परिश्रमम् राज्याश्रममुनिम् तम् राज्ये कुशलम् पप्रच्छ।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने वसिष्ठ द्वारा राजा दिलीप से राज्य के विषय में कुशल प्रश्न पूछने का वर्णन किया है।

अनुवाद – महर्षि वसिष्ठ ने अतिथि सत्कार द्वारा रथ से उत्पन्न होने वाली थकावट को दूर करने के अनन्तर राज्यरूपी आश्रम के मुनि ने राजा दिलीप से राज्य का कुशल पूछा।

भावार्थ – मुनि वसिष्ठ के द्वारा किये गये अतिथि सत्कार से रथ के क्षो□ से उत्पन्न थकान के दूर हो जाने पर राज्य रूपी आश्रम के प्रबन्ध तथा व्यवस्था के कार्य को पवित्र कत्तव्य □ावना से चलाने वाले तथा अनासक्त तथा उचित रूप देखने वाले मुनि तुल्य उस राजा दिलीप से राज्य की कुशल क्षेम का समाचार पूछा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आतिथ्यक्रियाशान्तः – न विद्यते तिथिः द्वितीया अस्य, अत्र एकरात्रम् एव अवस्थानात् इति अतिथिः (नञ् तत्पु.), तस्मै इदम् आतिथ्यं (अतिथि + ष्यन्), तस्य क्रिया आतिथ्यक्रिया (ष.तत्पु.) तथा शान्तः (तृ.तत्पु.), रथस्य क्षो□ः रथक्षो□ः (ष.तत्पु.), तेन परिश्रमः रथक्षो□परिश्रम (तृ.तत्पु.), आतिथ्यक्रियाक्षान्तः रथक्षो□परिश्रमः यस्य सः आतिथ्यक्रियाशान्तरथक्षो□ परिश्रमः (ब.व्री.) तम्।

छन्द – अनुष्टुप्।

विशेष – एक राजा से उसके राज्य के विषय में सर्वप्रथम कुशल प्रश्न राजा के प्रधान उत्तरदायित्व को व्यञ्जित करता है।

अथाथर्वनिधेस्तस्य विजितारिपुरः पुरः।
अर्थ्यामर्थपतिर्वाचमाददे वदतां वरः।।59।।

अन्वय – अथ विजितारिपुरः वदताम् वरः अर्थपतिः अथर्वनिधेः तस्य पुरः अर्थ्याम् वाचम् आददे।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप गुरु वसिष्ठ को राज्य के कुशल समाचार बता रहे हैं इसका वर्णन किया है।

अनुवाद – कुशल प्रश्न पूछने के अनन्तर शत्रुओं के नगर को जीतने वाले, वक्ताओं में सर्वश्रेष्ठ अर्थपति राजा दिलीप ने अथर्ववेद के ज्ञाता मुनि वसिष्ठ के समक्ष अर्थपूर्ण बात कहना प्रारम्□ किया।

भावार्थ – तदुपरान्त वसिष्ठ द्वारा कुशल प्रश्न पूछे जाने के अनन्तर शत्रु देश के विजेता, श्रेष्ठ वचन बोलने में चतुर तथा धनधान्यादि से सम्पन्न उस राजा दिलीप ने अथर्ववेद में पारंगत मुनि वसिष्ठ के सम्मुख अर्थ पूर्ण सोद्देश्य वाणी को ग्रहण किया अर्थात् वे सार्थक और सोद्देश्यपूर्ण वचन बोले।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विजित.– अरीणां पराणि अरिपराणि (ष.तत्पु.), विजितानि अरिपुराणि येन सः (ब.व्री.)। वदताम् – व द् + शतृ षष्ठी ब.। वदतां वरः – निर्धारण में षष्ठी। अर्थपतिः – अर्थस्य पतिः (ष. तत्पु.)।

छन्द – अनुष्टुप्।

उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वङ्गेषु यस्य मे।
दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्ता त्वमापदाम्।।60।।

अन्वय – सप्तसु अङ्गेषु में शिवम् उपपन्नम्। ननु यस्य मे दैवीनाम् मानुषीणाम् च आपदाम् त्वम् प्रतिहर्ता (असि)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में राजा दिलीप ने कहा जिस राज्य के आप गुरु हैं उस राज्य में सब कुछ कुशल मङ्गल हैं।

अनुवाद – हमारे राज्य के सातों अङ्गों में कुशल क्यों न हो जब कि मेरी देवी तथा मानुषी स□ी प्रकार की आपत्तियों को नष्ट करने वाले आप स्वयम् विद्यमान हैं।

भावार्थ – वसिष्ठ के द्वारा कुशल क्षेम विषयक प्रश्न पूछ लिये जाने पर राजा दिलीप ने अति विनम्र ध ीर–गम□ीर वाणी में उत्तर दिया कि हे गुरु देव! मेरे राज्य के सात अंगों में निश्चय रूप से कुशल–मंगल स्पष्ट रूप से प्राप्त है क्योंकि आप मुझे दैवी (अकाल मृत्यु, अतिवृष्टि, □ूकम्प आदि) तथा मनुष्यों के द्वारा

उत्पन्न संकटों (चोरी, डाका तथा रक्तपातादि) (विपत्तियों) से दूर रखने वाले हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – मे – 'मम' तथा 'मह्य' के स्थान पर 'मे का □ी प्रयोग होता है'। 'मे' यह रूप वाक्य या श्लोक के चरण के आदि में और च, वा तथा ए के पूर्व में प्रयुक्त नहीं होता। उपपन्नम् – उप + पद + क्त। दैवीनाम् – देवेभ्यः आगताः देवः (देव + अण् + ङीप्) तासाम्। मानुषीणाम् – मनुष्येभ्य आपदाः मानुष्यः (मनुष्य + अण् + ङीप्) तासाम् प्रतिहर्ता – (प्रतिहरति इति) (प्रति + हृ + तृच्)।

छन्द – अनुष्टुप्।

7.3 सारांश

रघुवंश महाकाव्य के इस अंश में महाकवि कालिदास ने वर्णन किया है कि राजा दिलीप की पत्नी मगध कुल में उत्पन्न हुई थी। यज्ञ की पत्नी दक्षिणा अपने दक्षिणा गुण विशेष के कारण प्रसिद्ध है, उसी की □ाँति राजा दिलीप की पत्नी का दाक्षिण्य गुण के कारण नाम सुदक्षिणा प्रसिद्ध था। राज्य □ार को मंत्रियों को सौंपकर राजा दिलीप और महरानी सुदक्षिणा पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से ब्रह्मा जी की पूजा–अर्चना करके मोर के कण्ठ से उत्पन्न वाणी को सुनते हुए वे दोनों सुदक्षिणा और दिलीप वसिष्ठ के आश्रम की ओर गये।

विद्वानों के समान सुन्दर आकृति वाले राजा को अपनी पत्नी को सुदक्षिणा को मार्ग में जो–जो पेड़–पौधे सरोवर के कमल तथा पशु–पक्षी आदि को दिखाते हुए इन सबका वर्णन करते हुए मार्ग की यात्रा पूर्ण करते हुये □ी उन्हें मालूम नहीं हो सकी। नीवार के जंगली सवां के दानों के □ाग को प्राप्त करने के अभ्यस्त एवं पर्ण कुटीर के द्वार पर ही ऋषि पत्नियों के द्वारा अपनी सन्तान की □ाँति पाले–पोषे मृगों से व्याप्त उस वसिष्ठ ऋषि के आश्रम को देखा। राजा दिलीप ने सायंकाल में जाप यज्ञादि सम्पादित करने के अन्त में, पास में बैठी हुई, अरुन्धती सहित वसिष्ठ को बैठे हुए ठीक उसी प्रकार देखा जैसे यज्ञाग्नि के साथ (उसकी प्रिया) स्वाहा देवी शो□ा दे रही हो।

गुरु वसिष्ठ द्वारा कुशलक्षेम पूछने पर राजा ने गुरु वसिष्ठ को अपने राज्य की प्राकृतिक और मानवीय आपदाओं से रक्षा करने वाला बताया।

7.4 बोध–प्रश्न

1. निम्न श्लोक का सप्रसंग अनुवाद एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी लिखिए

   तस्य दाक्षिण्यरुढेन नाम्ना मगधवंशजा।
   पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा।।31।।

   कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि।
   तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः।।32।।

   स्निग्धगम्□ीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ।
   प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव।।36।।

   परस्पराक्षिसादृश्यमदूरोज्झितवर्त्मसु ।
   मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु।।40।।

   श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्□ां तोरणस्रजम्।
   सारसैः कलनिर्ह्लादैः क्वचिदुन्नमिताननौ।।41।।

   हैयङ्गवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान्।
   नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम्।।45।।

   काप्य□िख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः।
   हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव।।46।।

सेकान्ते मुनिकन्याभि□स्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।
विश्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम्।।51।।

उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वङ्गेषु यस्य मे।
दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्ता त्वमापदाम्।।60।।

7.5 सहायक ग्रंथ

1. रघुवंश महाकाव्यम्, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई
2. रघुवंश महाकाव्यम्, (प्रथम सर्ग), डॉ. जगन्नाथ पाण्डेय, जयपुर
3. कालिदास, चन्द्रबली पाण्डे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
4. रघुवंश – चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस 1965।

7.6 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी इकाई से स्वयं खोजें।

इकाई – 8

रघुवंशम् (प्रथम सर्ग)

की श्लोक संख्या 61 से 95 तक श्लोकों का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद, भावार्थ, व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी, काव्यगत वैशिष्ट्य–छन्द, अलंकार आदि, सूक्ति व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

संस्कृत महाकवियों में कालिदास का अनुपम व्यक्तित्व एवं कृतित्व सर्वाधिक प्रशंसनीय है। रघुवंश महाकाव्य कालिदास की सर्वश्रेष्ठ कृति है अतएव कालिदास को 'रघुकार' नाम से भी व्यवहृत किया गया है। रघुवंश महाकाव्य की लोकप्रियता तथा व्यापकता का परिचय इस महकाव्य पर लिखित टीकाओं के अस्तित्व से विधिवत् जाना जा सकता है। रघुवंश के प्रथम सर्ग का विधिवत् अध्ययन करवाना प्रमुख उद्देश्य है किन्तु इसके साथ–साथ महाकवि कालिदास की कविता में माधुर्य, प्रसाद पदों की सरसता अर्थ का सौष्ठव एवम् अलङ्कारों का मञ्जुल प्रयोग प्रदर्शित कर काव्य के हृदय पक्ष को उजागर करना भी प्रमुख उद्देश्य का अभिन्न अंग है।

8.1 प्रस्तावना

महाकवि कालिदास संस्कृत कविता के अनुपम श्रृंगार हैं। आपके काव्य में मानवीय भावनाओं का चित्रण सहज रीति से प्रकट हुआ है। प्रकृति चित्रण के आप अनुपम कवि हैं। आपकी कविता में प्रकृति स्पष्ट रूप से मुखरित होती है रघुवंश के प्रथम सर्ग में अपनी विनम्रता का प्रदर्शन करते हुए महाकवि कालिदास ने रघुवंशी राजाओं की विशेषताओं पर विशद प्रकाश डाला है तथा सन्तति रहित राजा दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ वशिष्ठ आश्रम जाते हैं। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि गुरुदेव की असीम कृपा से उन्हें मनोवाञ्छित समाधान प्राप्त हो जायेगा। वशिष्ठ आश्रम तक जाने वाले मार्ग का वर्णन प्रकृति चित्रण तथा ग्रामवासियों के साथ संक्षिप्त वार्तालाप आदि के माध्यम से अत्यन्त हृदयग्राही हो गया है। प्रस्तुत इकाई में राजा दिलीप गुरु कृपा को कितना महत्त्व प्रदान करते हैं तथा गुरुदेव वसिष्ठ उन्हें उनका क्या समाधान स्वरूप आदेश देते हैं? यह विशद रीति से अध्येतव्य है।

8.2 श्लोक संख्या 61 से 95 तक

तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात्प्रशमितारिभिः।
प्रत्यादिश्यन्त इव में दृष्टलक्ष्यभिदः शराःङ्क61ङ्क

अन्वय – दूरात्, प्रशमितारिभिः, मन्त्रकृतः, तव, मन्त्रैः, दृष्टलक्ष्यभिदः, मे शराः, प्रत्यादिश्यन्त इव।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने महर्षि वशिष्ठ के मन्त्र एवं मानुषी आपत्तियों का प्रतिकारों का वर्णन किया है।

अनुवाद – मन्त्र का प्रयोग करने वाले आपके मन्त्रों के द्वारा ही शत्रुओं का विनाश दूर से हो जाता है अतः आपके

मन्त्रों के समक्ष केवल प्रत्यक्ष वस्तु का दान करने वाले हमारे बाण व्यर्थ से हो रहे हैं।

भावार्थ – हे मंत्रदृष्टा गुरुवर! आपके द्वारा दूर से ही तथा परोक्ष रूप से ही शत्रुओं नष्ट करने वाले प्रभाववाली मंत्रों ने मेरे स्पष्ट दिखायी देने वाले लक्ष्य का भेद करने वाले बाणों को निष्फल–सा बना दिया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – दृष्टं च तत् लक्ष्यं (कर्मधारय), तत् भिदन्ति इति दृष्टलक्ष्यभिदः (उपपदसमास)। प्रत्यादिश्यन्ते – प्रति + आ + दिश् + (कर्मणि) यक् लट् प्रथमा बहुवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – उत्प्रेक्षा।

हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु।
वृष्टिर्भवति सस्यानामवग्रहविशोषिणाम्ङ्क62ङ्क

अन्वय – हे होतः! त्वया विधिवद् अग्निषु आवर्जितम् हविः अवग्रहविशोषिणाम् सस्यानाम् वृष्टिः भवति।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने महर्षि वशिष्ठ द्वारा किये जाने वाले हवन देवी आपत्तियों का प्रतिकारों का वर्णन किया है।

अनुवाद – हे यज्ञ करने वाले! आपके द्वारा विधिवत् अग्नि में दी गई हवि ही वर्षा के बिना सूखते हुए अन्नों के लिये वृष्टि हो जाती है।

भावार्थ – यज्ञ यागादि करने वाले हे मेरे श्रेष्ठ गुरुदेव! आपके द्वारा याज्ञविधियों में नियमपूर्वक दी गई हवि ही अनावृष्टि काल में वर्षा के रूप को धारण करके धान्य के लिए, कृषि के लिए जल बरसा देती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आवर्जितं – आ + वृज् + णिच् + क्त। अवग्रह. – अवग्रहं (वृष्टि विघातः) एव अवग्रहः (अव + ग्रह + वर्ष प्रतिवन्धार्थे अप), अवग्रहेण शुष्यन्ति तच्छीला:–अवग्रहशोषिणः (उपपदसमास) तेषाम्। **सस्यानाम्** – षष्ठी चतुर्थी के अर्थ में।

छन्द – अनुष्टुप्।

पुरुषायुषजीविन्यो निरातङ्का निरीतयः।
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद्ब्रह्मवर्चसम्ङ्क63ङ्क

अन्वय – मदीयाः प्रजाः पुरुषायुषजीविन्यः निरातङ्का निरीतयः (सन्ति) इति यत् तस्य त्वद्ब्रह्मवर्चसम् हेतुः।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने प्रजा के सब प्रकार के सुख में महर्षि वशिष्ठ जी का ब्रह्मतेज का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – हमारी प्रजायें मनुष्य की आयु पर्यन्त जीने वाली, रोग रहित तथा ईतियों से रहित है इन सब का कारण आपका ब्रह्मतेज ही है।

भावार्थ – मेरी प्रजा के लोग जो पुरुष आयु के प्रमाण अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन धारण करते हैं, वे किसी भी आतंक से रहित होकर रहते हैं। वे किसी भी दैवी संकट से मुक्त हैं। मेरी प्रजा को किसी के द्वारा धन चुराये जाने, भयंकर पशुओं के उत्पात आद की कोई आशंका नहीं है अतः वे निर्भय जीवन व्यतीत करते हैं; मेरे राज्य में किसी भी प्रकार के दैवी उत्पात, दुर्भिक्ष, भूकम्प, उल्कापात आदि का भय नहीं है, इन सब का कारण आपका ब्रह्मतेज ही है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – मदीया. – मम इमाः (अस्मद् + छ)। प्रजाः – प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः(प्रादितत्पुरुष)। पुरुषा. – पुरुषस्य आयुः इति पुरुषायुषम् (षष्ठीतत्पुरुष) पुरुषायुं जीवितुं शीलं यासां ताः पुरुषायुषजीविन्यः (उपपद.)। निरातङ्काः – निर्गतः आतङ्कः याभ्यः ताः निरातङ्काः (बहुव्रीहिसमास) निरीतयः – निष्क्रान्ताः ईतिभ्य इति निरीतयः (प्रादि.) त्वद्ब्रह्म. – ब्रह्मणः वर्चः इति ब्रह्मवर्चसम् (षष्ठीतत्पुरुष), तव ब्रह्मवर्चसम् इति त्वद्ब्रह्मवर्चसम् (षष्ठीतत्पुरुष)।

छन्द – अनुष्टुप्।

त्वयैवं चिन्त्यमानस्य गुरुणा ब्रह्मयोनिना।
सानुबन्धाः कथं न स्युः संपदो मे निरापदः॥64॥

अन्वय – ब्रह्मयोनिना गुरुणा त्वया एवं चिन्त्यमानस्य निरापदः मे सम्पदः सानुबन्धाः कथं न स्युः।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में राजा दिलीप कहते हैं कि आप जैसे गुरु से ही मुझे सारा सुख व राज्य को कल्याण प्राप्त हो रहा है।

अनुवाद – ब्रह्मा के पुत्र तथा मेरे गुरु आपके द्वारा इस प्रकार कल्याण की चिन्ता किये जाते रहने पर विपत्ति रहित मेरी सम्पदायें क्यों न विघ्नबाधाओं से सदैव दूर रहे।

भावार्थ – आगे दिलीप कहता है कि ब्रह्मा के पुत्र एवं मेरे गुरु आप के द्वारा इस प्रकार मेरे विषय में सदैव चिन्तन किया जाता रहा, तो मैं कष्टों से रहित, सम्पत्ति से युक्त तथा दुःखों से रहित क्यों न होऊँगा? अर्थात् जब आप जैसे महानुभाव मेरे ऊपर कृपालु हैं; सदैव मेरे ही हित-चिन्तन में लगे रहने वाले हो तो मेरे सुख और सम्पत्ति में वृद्धि अवश्य होगी तथा मेरे सभी विघ्न स्वतः ही शान्त हो जायेंगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – चिन्त्यमानय – चिन्त्य इति चिन्त्यमानः (चिन्त् + णिच् + कर्मणि यक् + शानच्) तस्य। निरापदः – निर्गतः आपद्भयः इति निरापद् तस्य निरापदः(प्रादि तत्पुरुष) ।

छन्द – अनुष्टुप्।

किंतु वध्वां तवैतस्यामदृष्टसदृशप्रजम्।
न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी॥65॥

अन्वय – किन्तु तव एतस्याम् वध्वाम् अदृष्टसदृशप्रजम् माम् सद्वीपा रत्नसूः अपि मेदिनी न अवति।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में राजा दिलीप ने वशिष्ठ को आश्रम में आने का प्रयोजन बताया।

अनुवाद – किन्तु आपकी इस वधू में अपने समान सन्तान होती न देखकर मुझको समस्त द्वीपों सहित अनेक रत्नों को उत्पन्न करने वाली होती हुई भी यह पृथ्वी अच्छी नहीं लगती।

भावार्थ – राजा दिलीप गुरुवर वसिष्ठ से कहते हैं कि आपकी कृपा से सब ठीक है परन्तु मेरे पास बैठी हुई आपकी वधू से अपने अनुरूप पुत्र प्राप्त न करके अनेक द्वीपों वाली तथा रत्नों को जन्म देने वाली यह पृथ्वी भी मुझे कोई प्रसन्नता नहीं देती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – तव – युष्मत् + षष्ठी एकवचन। एतस्याम् – एतत् (स्त्री.) + सप्तमी विभक्ति एकवचन। वध्वाम् – वधू + सप्तमी एकवचनम्।

छन्द – अनुष्टुप्।

नूनं मत्तः परं वंश्याः पिण्डविच्छेददर्शिनः।
न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधासंग्रहतत्पराः॥66॥

अन्वय – नूनम्, मत्तः, परम्, पिण्डविच्छेददर्शिनः, वंश्याः, स्वधासंग्रहतत्पराः, सन्तः, श्राद्धे, प्रकामभुजः न (भविष्यन्ति)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा राजा दिलीप ने पुत्र न होने के कारण पितर दुःखपूर्वक पिण्ड ग्रहण करते हैं इसका वर्णन किया है।

अनुवाद – निश्चय ही मेरे मरने के बाद पिण्ड दान का विच्छेद देखने वाले स्वधा को भविष्यत् काल के लिये एकत्र करने में तत्पर हमारे पूर्वज श्राद्ध के समय इच्छापूर्वक भोजन नहीं करते।

भावार्थ – राजा दिलीप ऋषि वसिष्ठ से अपने हृदयगत विक्षोम को प्रकट करते हुए कहते हैं कि निश्चय ही मेरी मृत्यु के बाद सन्तान के अभाव के कारण पिण्डदान करने की परम्परा टूट जायेगी, इसे ध्यान में रखते हुए पितृभोज्य के संग्रह करने में ही लगे हुए पूर्वज-पितृगण श्राद्धकर्म में दिए गये भोज्य को तृप्तिपूर्वक ग्रहण नहीं करते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – मत्तः – अस्मद् + तसिल् (पञ्चम्याम्)। पिण्ड. – पिण्डस्य विच्छेदः पिण्डविच्छेदः

(षष्ठीतत्पुरुष), तं पश्यन्ति इति पिण्डविच्छेददर्शिनः (उपपदसमासः)। वंश्याः – वंशे भवाः (वंश + यत्)।

छन्द – अनुष्टुप्।

मत्परं दुर्लभं मत्वा नूनमावर्जितं मया।
पयः पूर्वैः स्वनिश्वासैः कवोष्णमुपभुज्यतेङ्क67ङ्क

अन्वय – मत् परम् दुर्लभम् मत्वा मया आवर्जितम् पयः पूर्वैः स्वनिश्वासैः कवोष्णम् उपभुज्यते नूनम्।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा राजा दिलीप ने कहा की मेरे पुत्र न होने के कारण मेरे पितर दुःख सहित जल तर्पण करते हैं, इसका वर्णन किया गया है।

अनुवाद – मेरे मरने के अनन्तर दुर्लभ समझ करके मेरे द्वारा दिये गये जल को हमारे पूर्वज अपने शोक की श्वासों से कुछ गरम कर पीते होंगे।

भावार्थ – राजा दिलीप कहता है कि मेरे बाद मेरी मृत्यु के बाद जलतर्पण क्रिया श्राद्ध मेरे पूर्वजों के लिए अप्राप्त होगी, ऐसा समझकर मेरे द्वारा अर्पित जल को भी मेरे पूर्वजों द्वारा जो स्वर्गस्थ हैं अपनी ही निःश्वासों से चिन्ता के कारण छोड़ी हुई उष्ण श्वास में थोड़ा-थोड़ा गर्म करके ग्रहण किया जाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – मत्परम् – मत्तः परम् इति मतपरम् (पञ्चमीतत्पुरुष)। दुर्लभम् – दुःखेन लब्धुं शक्यं (दुर + लभ् + कृच्छ्रार्थे) खल्। मत्वा – मन् + क्त्वा। आवर्जितम् – आ + वृज् + णिच् + क्त।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – उत्प्रेक्षा

सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलःङ्क68ङ्क

अन्वय – इज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः सः अहम् लोकालोकः अचलः इव प्रकाशः च अप्रकाशः च।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप द्वारा पितृ ऋण को चुकाने में अयोग्यता के कारण दुःख प्रकट करने का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – यज्ञ करने के कारण प्रसन्नचित्त वाला तथा पुत्र न होने के कारण शोक के अन्धकार में डूबा हुआ मैं इस समय लोकालोक पर्वत के समान प्रकाशमान् तथा अप्रकाशमान् हो रहा हूँ।

भावार्थ – राजा दिलीप अपनी स्थिति कुलगुरु वसिष्ठ के समक्ष स्पष्ट करता है कि यज्ञ-याग इत्यादि करने से शुद्ध आत्मावाला मैं लोकालोक पर्वत की भाँति प्रकाशवान् भी हूँ और अप्रकाशवान् भी हूँ। देव ऋण से मुक्ति प्राप्त करने के लिए मैं निरन्तर ही यज्ञ सम्पादन करता आया हूँ और उससे आत्मिक विशुद्धता प्राप्त की है। परन्तु पुत्र को प्राप्त किए बिना मेरी स्थिति लोकालोक पर्वत जैसी है जो एक साथ ही उजाले और अन्धकार में रहता है। लोक में स्थित होने से वह प्रकाशवान् है तथा अलोक की स्थिति से वह अन्धकार युक्त है। उसी लोका-लोक पर्वत जैसी मेरी दशा है। मैं सन्तान के अभाव के कारण अन्धकार में ढँका हुआ स्वयं का मानता हूँ क्योंकि मैं पितृऋण से मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – इज्या. – इज्यया विशुद्धः इति इज्याविशुद्धः (तृतीयातत्पुरुष), तादृशः आत्मा यस्य सः इज्याविशुद्धात्मा (बहुव्रीही)। प्रजा. – प्रजायाः लोपः प्रजालोपः (षष्ठीतत्पुरुष) तेन निमीलितः इति प्रजालोपनिमीलितः (तृतीयातत्पुरुष)। लोकालोकः – लोक्यते इति लोकः (लोक + घञ्), न लोक्यते इति अलोकः (नञ् तत्पुरुष), लोकश्चासावलोकश्च इति लोकालोकः (कर्मधारय)। प्रकाशः – प्रकाशते इति(प्र + काश् + अच्)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – उपमा।

लोकान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम्।

संततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे॥69॥

अन्वय – तपोदानसमुद्भवम् पुण्यम् लोकान्तरसुखम् (भवति) शुद्धवंश्या सन्ततिः हि परत्र इह च लोके शर्मणे (भवति)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप महर्षि वसिष्ठ के समक्ष सन्तति की प्राप्ति का महत्त्व प्रतिपादित करते हैं।

अनुवाद – तप और दान से उत्पन्न होने वाला सुख परलोक में सुख देने वाला होता है परन्तु शुद्धवंश की सन्तति इस लोक में तथा परलोक में सुख देने वाली होती है।

भावार्थ – तप और दान से उत्पन्न हुए सत्कर्म का फल तो परलोक में सुख देने वाला होता है परन्तु शुद्धवंश में उत्पन्न हुई सन्तान इस मृत्युलोक में और परलोक में कल्याण के लिए सुख के लिए हुआ करती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – तपो. – तपश्च तत् दानञ्च इति तपोदाने (द्वन्द्वतत्पुरुष), समुद्भवति अस्मात् इति समुद्भवः तपोदाने समुद्भवः यस्य तत् तपोदानसमुद्भवम् (बहुव्रीहिसमास)। लोका. – अन्य-लोकः इति लोकान्तरम् (कर्मधारय), लोकान्तरे सुखम् इति लोकान्तर सुखम् (सप्तमी तत्पुरुष)। शुद्ध. – शुद्धश्चासौ वंशः इति शुद्धवंशः (कर्मधारय), तस्मिन् भवा इति शुद्धवंश्या (शुद्धवंश + य)।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – अर्थान्तरन्यास।

तया हीनं विधातर्मां कथं पश्यन्न दूयसे।
सिक्तं स्वयमिव स्नेहाद्वन्ध्यमाश्रमवृक्षकम्॥70॥

अन्वय – हे विधातः! तथा हीनम् माम् स्नेहात् स्वयम् एव सिक्तम् वन्ध्यम् आश्रमवृक्षकम् इव पश्यन् कथम् न दूयसे।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप ने महर्षि वसिष्ठ से कहा कि आप इतने समर्थ होते हुए भी मुझे निःसन्तान जानकर दुःखी क्यों नहीं होते हैं, इसका वर्णन किया है।

अनुवाद – हे भगवन्! उस सन्तति से रहित मुझको देखते हुए अपने स्नेह से स्वयं सींचे गये फलरहित आश्रमवृक्ष के समान क्या आपको व्यथा नहीं होती है।

भावार्थ – हे भाग्यनिर्माता मेरे कुलगुरु वसिष्ठ! तुम उस संतान से रहित प्रेम से सींचे फलरहित आश्रम के वृक्ष के समान मुझे यहाँ देखकर क्यों नहीं दुःखी होते?

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विधातः–विदधाति इति विधाता तस्य सम्बुद्धौ एकवचनम् (वि + धा + तृच् सम्बुद्धि)। वृक्षकः – ह्रस्वः वृक्षः वृक्षक, (वृक्ष + क), आश्रमस्य वृक्षकः (ष. तत्पु.) तम्। दूयसे – दूङ् + लट् मध्यमपुरुष एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – उपमा।

असह्यपीडं भगवन्नृणमन्त्यमवेहि मे।
अरुन्तुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः॥71॥

अन्वय – हे भगवन्! मे अन्त्यम् ऋणम् अनिर्वाणस्य दन्तिनः अरुन्तुदम् आलानम् इव असह्यपीडम् अवेहि।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप द्वारा सन्तान नहीं होने के अभाव में असह्य पीडा का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – हे भगवन्! जिस प्रकार नहाने के लिये व्याकुल हाथी अपने बन्धनस्तम्भ को असह्य कष्टजनक मानता है, उसी प्रकार पुत्र के अभाव में यह अन्तिम ऋण मुझे अत्यन्त दुःखदायी हो रहा है।

भावार्थ – हे मेरे स्वामी! स्नानरहित हाथी के लिए उसका बन्धन-स्थल जिस तरह मर्मांतक पीड़ा देने वाला होता है,

उसी की भाँति अवशिष्ट पितृऋण असहनीय कष्ट प्रदान कर रहा है, ऐसा समझिये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अनिर्वाणस्य – न विद्यते निर्वाणं (निर्वृतिः गजमज्जनं वा) यस्य सः अनिर्वाणः (बहुव्रीहिसमास) तस्य। निर्वाणः – निर् + वा (गतिगन्धनयोः) + क्त। अरुंतुदम् – अरुः (मर्म) तुदति इति अरुंतुदः (उपपदसमास) तम्। अन्त्यम् – अन्ते भवं (अन्त + य)। असह्य. – सोढुं योग्या सह्या (सह् + य), न सह्या असह्या (नञ् तत्पुसमास), असह्या पीडा यस्मिन् तत् (ब.व्री.)। अवेहि – अव + इ + लोट् मध्यम एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – उपमा।

तस्मान्मुच्ये यथा तात संविधातुं तथार्हसि।
इक्ष्वाकूणां दुरापेऽर्थे त्वदधीना हि सिद्धयः॥72॥

अन्वय – हे तात! तस्मात् यथा मुच्ये तथा संविधातुम् त्वम् अर्हसिं हि इक्ष्वाकूणाम् दुरापे अर्थे सिद्धयः त्वदधीनाः।

प्रसङ्ग – राजा दिलीप गुरु वसिष्ठ से पितृऋण से मुक्ति दिलाने के लिये उपाय पूछने का वर्णन इस श्लोक में किया गया है।

अनुवाद – हे तात! इस महान् दुःख से जिस प्रकार मैं मुक्त हो सकता हूँ वह आप करने में समर्थ है, क्योंकि इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के अत्यन्त कठिन कार्यों की सिद्धि आपके ही अधीन रहा करती है।

भावार्थ – हे पूज्य गुरुवर! जिस तरह भी मैं उस पितृऋण से मुक्ति प्राप्त करूँ वैसा ही तुम करने में समर्थ हो। अर्थात् आप मुझे जिस किसी भी तरह पितृऋण से मुक्ति प्राप्त कराने में सामर्थ्यवान् हो। इक्ष्वाकुओं की दुर्लभ वस्तुओं को प्राप्त करने सम्बन्धी सफलता सिद्धि तो आपके ही अधीन है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – संविधातुम् – सम् + वि + धा + तुमुन्। इक्ष्वाकूणाम् – इक्ष्वाकाः अपत्यानि पुमांसः (इक्ष्वाकु + अञ् तथा अञ् का लोप) यहाँ पर कृद्योग के कारण षष्ठी नहीं होनी चाहिए। किन्तु यहाँ पर शेषे षष्ठी है। दुरापः – दुःखेन आप्तं शक्यः अथवा दुःखेन आप्यते यः सः (दुर् + आप् + खल्)। त्वदधीनाः – तव अधीनाः (षष्ठीतत्पुरुष)।

छन्द – अनुष्टुप्।

इति विज्ञापितो राज्ञा ध्यानस्तिमितलोचनः।
क्षणमात्रमृषिस्तस्थौ सुप्तमीन इव ह्रदः॥73॥

अन्वय – इति राज्ञा विज्ञापितः ऋषिः ध्यानस्तिमितलोचनः क्षणामात्रम् सुप्तमीनः ह्रदः इव तस्थौ।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में गुरु वसिष्ठ ने राजा दिलीप की बात सुनकर इस पर विचार करने लगा।

अनुवाद – इस प्रकार राजा दिलीप के द्वारा ऐसा कहे जाने के अनन्तर महर्षि वसिष्ठ ध्यान में आँखों को बन्द करके सोई हुई मछलियों वाले सरोवर के समान सुशोभित हुए।

भावार्थ – राजा दिलीप द्वारा इस तरह पूर्वोक्त प्रकार से निवेदन किये जाने पर ऋषि वसिष्ठ ध्यान में लीन होकर नेत्र बन्द कर के थोड़ी देर तक सोये हुए जलचरों से युक्त तालाब की तरह स्थित हो गये। जिस तरह किसी तालाब में उसके जलचरों के सो जाने से उसके जल में स्थिरता आ जाती है, उसी भाँति वसिष्ठ निश्चल और समाधिस्थ स्थिति को प्राप्त हो गये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विज्ञापितः – वि + ज्ञा + णिच् + क्त। स्तिमित – स्तिम् + क्त। ध्यान. – ध्यानेन स्तिमिते (तृत्पुरुष.) तादृशे लोचने यस्य सः ध्यानस्तिमितलोचनः (बहुव्रीहि)। क्षण. – क्षणम् एव (क्षण + मात्रच्) क्रियाविशेषण। सुप्त. – सुप्ताः (अत एव निश्चलाः) मीनाः यस्मिन् सः (बहुव्रीहि)। तस्थौ – स्था + लिट् प्रथमपुरुष एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – उपमा।

सोऽपश्यत्प्रणिधानेन संततेः स्तम्भकारणम्।
भावितात्मा भुवो भर्तुरथैनं प्रत्यबोधयत्‌॥74॥

अन्वय – भावितात्मा सः प्रणिधानेन भुवः भर्तुः सन्ततेः स्तम्भकारणम् अपश्यत् अथ एवम् प्रत्यबोधयत्।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा गुरु वशिष्ठ ने ध्यानरूपी नेत्र से पुत्र न होने के कारण को जानकर राजा दिलीप को बतलाने का वर्णन किया गया है।

अनुवाद – शुद्ध अन्तःकरण वाले उन महर्षि वसिष्ठ ने योग-बल से राजा के सन्तान न होने का कारण जाना और पुनः राजा को इस प्रकार बतलाना प्रारम्भ किया।

भावार्थ – शुद्ध अन्तःकरण (हृदय) वाले उस मुनि वसिष्ठ ने समाधिस्थ होकर पृथ्वी के पालन करने वाले राजा दिलीप के यहाँ घर में सन्तान के अवरोध के उत्पन्न न होने के कारण को प्रत्यक्ष देख लिया और उसके बाद इस को राजा दिलीप को बताया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – भाविता. – भावितः आत्मा यस्य सः (बहुव्रीहि)। भुवः – भू षष्ठी एकवचन। स्तम्भ. – स्तम्भस्य कारणं (षष्ठी तत्पुरुष) प्राणिधानेन – प्र + नि + धा + ल्युट् तृतीया एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

पुरा शक्रमुपस्थाय तवोर्वी प्रति यास्यतः।
आसीत्कल्पतरुच्छायामाश्रिता सुरभिः पथि॥75॥

अन्वय – पुरा शक्रम् उपस्थाय उर्वीम् प्रति यास्यतः तव पथि कल्पत्पतरुच्छायाम् आश्रिता सुरभिः आसीत्।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में गुरु वसिष्ठ का राजा को सन्तान की उत्पत्ति में बाधक होने का कारण बताया।

अनुवाद – पूर्व समय में अर्थात् आज से कुछ दिन पूर्व जब आप इन्द्र की सेवा करके पृथ्वी की ओर आ रहे थे, तो उस समय आपके मार्ग में कल्पतरुवृक्ष की छाया में कामधेनु बैठी हुई थी।

भावार्थ – सन्तान के अवरोध के कारण को स्पष्ट करते हुए मुनि वसिष्ठ ने राजा दिलीप को बताया कि आज से बहुत पहले इन्द्र को अपनी सेवा में प्रसन्न करके जब तुम स्वर्गलोक में पृथ्वीलोक की ओर आने वाले मार्ग से आ रहे थे, तो तुम्हारे मार्ग में कल्पवृक्ष की छाया में कामधेनु बैठी हुई थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उपस्थाय – उप + स्था + ल्यप्। उर्वी प्रति – प्रति के योग में द्वितीया विभक्ति। यास्यतः – यास्यति इति यास्यम् (या + लृट् शतृ) तस्य। पथि – पथिन् सप्तमी ए.। कल्प. – कल्पतरोः छाया कल्पतरुच्छाया (ष.तत्पु.)। ताम्। आश्रिता – आ + श्रि + क्त स्त्री।

छन्द – अनुष्टुप्।

धर्मलोपभयाद्राज्ञीमृतुस्नातामिमां स्मरन्।
प्रदक्षिणक्रियार्हायां तस्यां त्वं साधु नाचरः॥76॥

अन्वय – ऋतुस्नाताम् इमाम् राज्ञीम् धर्मलोपभयात् स्मरन् प्रदक्षिणक्रियार्हायाम् तस्याम् त्वम् साधु न आचरः।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में सुरभि को देखकर उसकी प्रदक्षिणा (परिक्रमा) न करके तूने अच्छा नहीं किया इसका वर्णन किया है।

अनुवाद – ऋतु स्नान से निवृत्त हुई उस रानी सुदक्षिणा का धर्मलोप होने के भय से स्मरण करते हुए प्रदक्षिणा करने के योग्य उस कामधेनु का आपने सम्मान नहीं किया।

भावार्थ – ऋतुस्नाता (रजस्वला) इस रानी सुदक्षिणा को धर्म के लोप के भय से याद करते हुए प्रदक्षिणा करने योग्य इस कामधेनु के प्रति आप ने अच्छा आचरण नहीं किया। प्रदक्षिणा द्वारा उचित व्यवहार नहीं किया, यही आप का अपराध है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – धर्म – धर्मस्य लोपः धर्मलोपः (षष्ठी तत्पुरुष), तस्मात् भयं धर्मलोपभयं (षष्ठीतत्पुरुष)

तस्मात्। ऋतु. – ऋतुना स्ताना ऋतुस्नाता (तृतीया तत्पुरुष) ताम्। स्मरन् – स्मृ + शतृ। प्रदक्षिण – प्रदक्षिणस्य क्रिया प्रदक्षिणक्रिया (षष्ठी तत्पुरुष) अर्हति – इति अर्हा, प्रदक्षिण–क्रियायाम् अर्हा इति प्रदक्षिणक्रियार्हा (सप्तमी तत्पुरुष) तस्याम्।

छन्द – अनुष्टुप्।

अवजानासि मां यस्मादतस्ते न भविष्यति।
मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा॥77॥

अन्वय – यस्तात्, माम्, अवजानासि, अतः, मत्प्रसूतिम्, अनाराध्य, ते प्रजया, न भविष्यति, इति सा त्वां शशाप।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महर्षि वसिष्ठ ने राजा दिलीप को कामधेनु के शाप के बारे में बतलाते हैं।

अनुवाद – जिस कारण से तुमने मेरा अनादर किया है इस कारण से मेरी सन्तति की आराधना किये बिना तुझे सन्तान की प्राप्ति नहीं होगी – ऐसा शाप उस कामधेनु ने दिया।

भावार्थ – सन्तान प्राप्ति के लिए ऋतुस्नाता अपनी पत्नी के प्रति भोग की इच्छा में लीन होने के कारण तुम ने मेरी आराधना किये बिना तुम्हें सन्तान नहीं होगी – इस प्रकार से उसने तुम्हें शाप दे दिया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अवजानासि – अव + ज्ञा + लट् मध्यम एकवचन। मत्प्रसूतिम् – मम प्रसूतिः मत्प्रसूतिः (ष. तत्पु.) ताम्। अनाराध्य – न आराध्य (आ + राध् + ल्यप्) अनाराध्य। शशाप – शप् + लिट् प्रथम एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

स शापो न त्वया राजन्न च सारथिना श्रुतः।
नदत्याकाशगङ्गायाः स्रोतस्युद्दामदिग्गजे॥78॥

अन्वय – हे राजन् उद्दामदिग्गजे आकाशगङ्गायाः स्रोतसि नदति (सति) सः शापः त्वया न श्रुतः न च सारथिना श्रुतः।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महर्षि वसिष्ठ उस शाप को दिलीप ने क्यों नहीं सुना, इसका कारण बताते हैं।

अनुवाद – हे राजन्! उन्मुक्त स्वच्छन्द अर्थात् बन्धन–रहित दिग्गजों के आकाश गंगा के प्रवाह में जल–विहार करने के कारण शब्द करते रहने पर वह शाप न तो तुम्हारे द्वारा सुना गया और न तुम्हारे सारथि ने ही सुना।

भावार्थ – वसिष्ठ दिलीप को बताते हैं कि हे भूपेन्द्र! मद से अत्यधिक मतवाले बने हुए दिग्गजों के द्वारा आकाश गंगा के प्रवाह में तेज कोलाहल (ध्वनि) के उठने के कारण उस शाप को न तो तुमने ही सुना और न तुम्हारे सारथि के द्वारा सुना गया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आकाश. – आकास्य गंगा आकाश गंगा (षष्ठी तत्पुरुषसमास) तस्याः। उद्दाम. – दाम्नः उद्गताः उद्दमानः (प्रादि.), दिशां गजाः दिग्गजाः (षष्ठी तत्पुरुष), उद्दामानः दिग्गजाः यस्मिन् तत् उद्दामदिग्गजं (बहुव्रीहिसमास) तस्मिन्। नदति – नद्–शतृ सप्तमी एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

ईप्सितं तदवज्ञानाद्विद्धि सार्गलमात्मनः।
प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः॥79॥

अन्वय – तदवज्ञानात् आत्मनः ईप्सितम् सार्गलम् विद्धि, हि पूज्यपूजाव्यतिक्रमः श्रेयः प्रतिबध्नाति।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महर्षि वसिष्ठ ने कहा कि सुरभि की पूजा के उल्लंघन से तेरी पुत्र कामना में बाधा पड़ गई।

अनुवाद – उस कामधेनु का अपमान होने से आप अपना मनोरथ रुका हुआ जानें, क्योंकि पूजनीय लोगों की पूजा का उल्लंघन ही कल्याण को रोकने वाला हुआ करता है।

भावार्थ – वसिष्ठ कहते हैं कि उस कामधेनु के अपमान से अपने मनोरथ को बाधित (अवरोधपूर्ण) समझिये। वास्तव में यह एक सिद्धान्त है कि सम्माननीय का सम्मान न करने से कल्याण में रुकावट खड़ी हो जाती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – तद. – तस्याः अवज्ञानं (षष्ठीतत्पुरुष) तस्मात्। ईप्सितम् – आप्तुम् इष्टम् (आप् + सन्) (ईप्स्) + क्त, (सन्नन्त आप् से क्त और ईकारादेश)। सार्गलम् – अर्गलया सह वर्तमानः (बहुव्रीहिसमास)। विद्धि – विद् + लोट् मध्यम ए.। पूज्य. – पूजितुं योग्याः पूज्याः (पूज् या) तेषां पूजा पूज्यपूजा (षष्ठीतत्पुरुष), तस्याः व्यतिक्रमः (षष्ठीतत्पुरुष) बध्नाति – बध + लट् प्रथम एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – अर्थान्तरन्यास।

हविषे दीर्घसत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतसः।
भुजंगपिहितद्वारं पातालमधितिष्ठतिङ्क8ङ्क

अन्वय – सा च इदानीम् दीर्घसत्रस्य प्रचेतसः हविषे भुजङ्गपिहितद्वारम् पातालम् अधितिष्ठति।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महर्षि वसिष्ठ ने राजा दिलीप को कामधेनु (सुरभि) इस समय कहाँ है, इसके बारे में स्पष्ट बताया है।

अनुवाद – वह कामधेनु गाय इस समय बहुत दिनों से सम्पन्न होने वाले वरुण के यज्ञ में हवि आदि देने के लिये साँपों से अवरुद्ध मार्ग वाले पाताल लोक में रहती है।

भावार्थ – वसिष्ठ राजा दिलीप को बताते हैं कि वह कामधेनु अब दीर्घकाल तक चलने वाले वरुण के यज्ञ में हवि के लिए अपेक्षित घृत आदि के लिए; सर्पों द्वारा बन्द किये द्वार वाले पाताल लोक (वरुण लोक) को गई हुई है।

व्याकरण – दीर्घसत्र – दीर्घ सत्रं यस्य सः दीर्घसत्रः (बहुव्रीहि) तस्य। भुजंग. – भुजङ्गैः पिहितं भुजङ्गपिहितं (तृतीयातत्पुरुष), तादृशं द्वारं यस्य तत् (बहुव्रीहि) अधितिष्ठति – अधि + स्था + लट् प्रथम एकवचन। पातालम् – अधितिष्ठति – क्योंकि यहाँ पर स्था का उपसर्ग अधि है, इसलिए अधितिष्ठति सकर्मक है और पाताल इसका कर्म है।

छन्द – अनुष्टुप्।

सुतां तदीयां सुरभेः कृत्वा प्रतिनिधिं शुचिः।
आराधय सपत्नीकः प्रीता कामदुघा हि साङ्क81ङ्क

अन्वय – तदीयाम् ताम् सुताम् सुरभेः प्रतिनिधिम् कृत्वा शुचिः सपत्नीकः आराधय हि सा प्रीता कामदुधा (भवति)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महर्षि वसिष्ठ राजा दिलीप को पत्नी सहित कामधेनु की पुत्री की आराधना करने को कहते हैं।

अनुवाद – आप उस कामधेनु की पुत्री को उस कामधेनु की प्रतिनिधि मान कर पवित्र होकर पत्नी सहित आराधना करो, क्योंकि प्रसन्न होने पर वह तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण कर सकती है।

भावार्थ – वसिष्ठ ऋषि राजा दिलीप को विश्वास के साथ बताते हैं कि इसे सुरभि का प्रतिनिधि मानकर, पवित्र होकर अपनी पत्नी सहित आराधना करो क्योंकि निश्चय ही वह सुरभि की पुत्री नन्दिनी प्रसन्न होने पर कामनाओं को पूर्ण करेगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सपत्नीकः – पत्न्या सह वर्तमानः (बहुव्रीहि)। तदीयाम् – तस्याः इयं तदीया (तत् + छ) ताम्। आराधय – आ + राध् + णिच् लोट् मध्यम एकवचन। प्रीता – प्री + (कर्त्तरि) क्त स्त्री.। कामदुधा – कामान् दोग्धि इति (उपपद) – कप् प्रत्यय तथा ह को घ।

इति वादिन एवास्य होतुराहुतिसाधनम्।
अनिन्द्या नन्दिनी नाम धेनुराववृते वनात्ङ्क82ङ्क

अन्वय – इति वादिनः एव होतुः अस्य (आहुति) साधनम् नन्दिनी नाम अनिन्द्या धेनुः वनात् आववृत्ते।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महर्षि वसिष्ठ राजा दिलीप को पत्नी सहित कामधेनु की पुत्री की आराधना करने को कहते हैं, उसी समय कामधेनु की पुत्री नन्दिनी वन से लौट कर आश्रम में आ गई, इसका वर्णन किया गया है।

अनुवाद – उस होता मुनि वशिष्ठ के ऐसा कहते हुए रहने पर यज्ञ के लिये घी आदि सामग्री देने वाली नन्दिनी नाम से अभिहित प्रशंसनीय गाय वन से लौट कर आ गई।

भावार्थ – तपोनिष्ठ वसिष्ठ मुनि दिलीप को नन्दिनी के विषय में उसकी आराधना करने की बात कह ही रहे थे कि इतने में ही उस हवनशील के द्वारा किये जाने वाले यज्ञ यागादि के निमित्त घृत आदि सामग्री का प्रबन्ध करने वाली नन्दिनी नामक प्रशंसनीय गाय वन से लौट आयी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – इति वदति तच्छील: इति इतिवाद तस्य – यहाँ पर निरपेक्ष षष्ठी है क्योंकि इति के साथ कृदन्त का प्रयोग है इसलिए कर्त्ता अप्रयुक्त है। यहाँ पर इतिवादिन: का सम्बन्ध अस्य होतु:' के साथ नहीं है। अस्य होतु: का सम्बन्ध आहुति साधनं के साथ है। होतु: – जुहोति इति होता (ह् + तन्) तस्य। आहुति. – आहुतीनां साधनं (षष्ठीतत्पुरुष)। नन्दिनी – नन्दयति इति सा (नन्द + इन् + ङीप् स्त्रियाम्)। अनिंद्या – निन्दितुं योग्या निन्द्या (निन्द् + य), न निन्द्या (नञ् तत्पुरुषसमास) आववृते – आ + वृत लिट् प्रथम एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला।
बिभ्रती श्वेतरोमाङ्कं संध्येव शशिनं नवम्‌ङ्क83ङ्क

अन्वय – पल्लवस्निग्धपाटला, ललाटोदयम्, आभुग्नम्, श्वेतरोमाङ्कम्, बिभ्रती, नवम्, शशिनम्, बिभ्रती, सन्ध्या इव (स्थिता)।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने नन्दिनी के रूप का वर्णन किया है।

अनुवाद – वह नवीन पल्लवों के समान कोमल लाल रंग वाली, माथे पर कुछ-कुछ टेढ़े श्वेत बालों के चिह्न को धारण करने वाली नवीन चन्द्रमा को धारण करने वाली सन्ध्या के समान उपस्थित हो गई।

भावार्थ – नये चन्द्रमा को संन्ध्याकाल में धारण करते हुए नयी कोपल के समान चिकने तथा पाटल रंग के मस्तक रूपी आकाश पर थोड़ी-सी टेढी आकृति वाले श्वेत बालों के चिह्न को वह नन्दिनी धारण किये हुए थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – ललाटोदयम् – ललाटे उदय: यस्य: स: ललाटोदय: (ब.व्री.) तम्। भुग्नम्-(भुजो (कौटिल्ये) + क्त। आभुग्न: – ईषद् भुग्न: तम्। विभ्रती: – भृ (जुहोत्यादि) + शतृ स्त्री. प्रथमा ए.। पल्लव. – स्निग्ध: च असौ पाटला च स्निग्धपाटला (कर्मधारयसमास)। पल्लवत् – स्निग्धपाटला पल्लवस्न्धिपाटला (कर्मधारयसमास)। श्वेत. – श्वेतानि रोमाणि श्वेतरोमाणि (कर्मधारयसमास), तानि एव अँका श्वेतरोमांक: (कर्मधारयसमास) तम्।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलंका – उत्प्रेक्षा।

भुवं कोष्णेन कुण्डोघ्नी मेध्येनावभृथादपि।
प्रस्नवेनाभिवर्षन्ती वत्सालोकप्रवर्तिनाङ्क84ङ्क

अन्वय – कोष्णेन अवभृथादपि मेध्येन, वत्सालोकप्रवर्तिना प्रस्नवेन भुवम् अभिवर्षन्ती कुण्डोघ्नी।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास नन्दिनी के पुत्र प्रेम का वर्णन कर रहे हैं।

अनुवाद – कुछ-कुछ गरम, यज्ञ के अनन्तर होने वाले स्नान से भी अधिक पवित्र तथा बछड़े को देखने से अपने आप बहते हुए दूध से पृथ्वी की सींचती हुई नन्दिनी आ गई।

भावार्थ – वसिष्ठ वर्णन करते हैं कि उस नन्दिनी का थोड़ा-थोड़ा गरम दूध यज्ञ के अन्त में किए गये स्नान से भी अधिक पवित्र था। बछड़े को देखने मात्र से ही अत्यधिक प्रेम होने से उसके स्तनों से दूध बहने लगता था। अपने दुग्ध के प्रवाह के सम्पूर्ण पृथ्वी को स्नान-सा कराती थी। उसके स्तन मटके (घड़े) के समान थे। अर्थात् वह नन्दिनी अधिक दूध देने वाली, पवित्र एवं अपने बछड़े के प्रति अत्यधिक प्रेम करने के स्वभाव वाली थी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – वत्सा. – वत्सस्य आलोक: वत्सालोक: (षष्ठीतत्पुरुष), तेन प्रवर्तते तच्छील: इति वत्सालोक प्रवर्ती (उपपद.) तेन। कोष्णेन – ईषद् उष्ण: कोष्ण: (कर्मधारय) तम्। भुवम् – भू + द्वितीया

एकवचन। अभिवर्षन्ती – अभि + वृष् + शत् स्त्री. प्रथमा एकवचन। कुण्डोध्नी – कुण्डम् इव ऊधः यस्याः सा (बहुव्रीहि)।

छन्द – अनुष्टुप्।

रजः कणैः खुरोद्धूतैः स्पृशद्भिर्गात्रमन्तिकात्।
तीर्थाभिषेकजां शुद्धिमादधाना महीक्षितः॥85॥

अन्वय – खुरोद्धूतैः, अन्तिकात्, गात्रम्, स्पृशद्भिः, रजः कणैः, महीक्षितः तीर्थाभिषेकजाम् शुद्धिम् आदधाना।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने धूलि के कणों से राजा दिलीप की शुद्धि का वर्णन किया है।

अनुवाद – खुरों के द्वारा उड़ाये गये समीप से राजा दिलीप के शरीर को स्पर्श करने वाले धूलि-कणों के द्वारा राजा को मानो तीर्थाभिषेक से शुद्धि कराती हुई नन्दिनी आ गई।

भावार्थ – नन्दिनी के खुरों से उठने वाली धूल के निकट स्पर्श से राजा दिलीप के शरीर ने तीर्थों में स्नान करने से होने वाली शुद्धता को धारण सा कर लिया था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उद्धूत – उत् + धृ + क्त। खुरो. – खुरैः उद्धता (तत्पुरुषसमास) तैः। अन्तिकात् – दूर और समीप अर्थ वाले शब्दों में द्वितीया तथा पञ्चमी विभक्ति होती है। स्पृशद्भिः – स्पृश् + शतृ तृतीया बहुवचन। रजः कणैः – रजसां कणः रजकणः (षष्ठीतत्पुरुष) तैः। महीक्षितः – महीं क्षियते इति महीक्षित् (उपपदसमास) तस्य। तीर्था. – तीर्थस्य अभिषेकः तीर्थाभिषेकः (षष्ठीतत्पुरुष) तेन जाता तीर्थाभिषेकजा (उपपदसमास) ताम्। आदधाना – आ + धा + शानच् स्त्री. प्रथमा एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

तां पुण्यदर्शनां दृष्ट्वा निमित्तज्ञस्तपोनिधिः।
याज्यमाशंसितावन्ध्यप्रार्थनं पुनरब्रवीत्॥86॥

अन्वय – निमित्तज्ञः, तपोनिधिः पुण्यदर्शनम् ताम् दृष्ट्वा आशंसितवन्ध्यप्रार्थनम् याज्यम् पुनः अब्रवीत्।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने शकुन शास्त्रवेत्ता महर्षि वसिष्ठ नन्दिनी को देखकर राजा दिलीप से बोले।

अनुवाद – शकुनों को जानने वाले महर्षि वसिष्ठ ने पुण्य दर्शनों वाली उस नन्दिनी गाय को देख करके सफल मनोरथ की याचना करने वाले यजमान राजा दिलीप से पुनः कहा।

भावार्थ – पुण्यदर्शन वाली (दर्शन होने मात्र से ही मनोरथपूर्ण करने वाली) एवं प्रशंसनीय तथा व्यर्थ न जाने वाली प्रार्थना वाली उस नन्दिनी धेनु को देखकर शकुनशास्त्र के ज्ञाता कुलगुरु वसिष्ठ ने अपने यजमान दिलीप से तदनन्तर कहा कि गाय का आगमन मनोरथ सिद्धि का प्रतीक है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – निमित्तज्ञः – निमित्तं जानाति इति निमित्तज्ञः (उपपदसमास)। तपोनिधः – तपसां निधिः (षष्ठीतत्पुरुष)। पुण्यदर्शनाम् – पुण्यं दर्शनं यस्याः सा पुण्यदर्शन (ब.व्री.) ताम्। दृष्ट्वा – दृश् + क्त्वा। आशंसितम् – आ = शंस + (भावे) क्त नपुं.। आशंसि. – न बन्ध्यम् अबन्ध्यं (नञ् तत्पुरुष), अबन्ध्यं प्रार्थनम् अबध्यप्रार्थनं (कर्मधारय) आशंसिते अवन्ध्यप्रार्थनं यस्य सः आशंसिताबन्ध्यप्रार्थनः (बहुव्रीहि) तम्। याज्यम् – याजयितुं योग्यः याज्यः (यज् + णिच् + य) तम्। अब्रवीत् – ब्रूञ् + लङ् प्रथम एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगणयात्मनः।
उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत्॥87॥

अन्वय – राजन्! आत्मनः, सिद्धिम्, अदूरवर्तिनीम्, विगणय, यत्, नाम्नि, कीर्तिते, एव इयम्, कल्याणी उपस्थिता।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महर्षि वसिष्ठ राजा दिलीप की कामना पूर्ण होने का वर्णन करते हैं।

अनुवाद – हे राजन्! आप अपनी कामना को शीघ्र पूर्ण होने वाली समझो, क्योंकि नाम लेते ही वह कल्याणी नन्दिनी

गाय उपस्थित हो गई है।

भावार्थ – गुरु वसिष्ठ ने राजा दिलीप से कहा हे राजन्! तुम अपनी सफलता को समीप से ही प्राप्त हुई सी जानो, समझो क्योंकि नाम लेते ही यह कल्याणी उपस्थित हो गयी है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अदूरवर्तिनीम् – न दूरम् अदूरं (नञ् तत्पु.) तस्मिन् वर्तितुं शीलम् अस्याः सा अदूरवर्तिनी (उपपदसमास) ताम् विगणय – वि + गण् + लोट् मध्यम एकवचन। कल्याणी – कल्याण + ङीष्। नाम्नि – नामन् + सप्तमी ए.। कीर्तिते – कृत (संशब्दने) + क्त सप्तमी ए., नाम्नि कीर्तिते – सति सप्तमी। उपस्थिता – उप + स्था + क्त स्त्री. (आ को इ)।

छन्द – अनुष्टुप्।

वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम्।
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसिङ्क88ङ्क

अन्वय – वन्यवृत्तिः शश्वत् आत्मानुगमनेन इमाम् गाम् अभ्यसनेन विद्याम् इव प्रसादयितुम् अर्हसि।

अनुवाद – आप वन के कन्द–मूल–फलों का आहार करते हुए निरन्तर इसके पीछे–पीछे चलते हुए इसको उसी प्रकार प्रसन्न करने में लगे रहो हो, जिस प्रकार अभ्यास से विद्या प्राप्त की जाती है।

भावार्थ – गुरु वसिष्ठ राजा दिलीप को नन्दिनी गाय को प्रसन्न करने का उपाय बताते हुये कहते हैं कि हे राजन्। तुम वन से प्राप्त कन्द–मूलादि के आहार को प्राप्त करते हुए निरन्तर स्वयं तुम इसका अनुसरण करते हुए इस गाय को ठीक उसी तरह प्रसन्न करने में समर्थ हो, जिस तरह विद्यार्थी अपने अभ्यास से विद्या–देवी को प्रसन्न कर लेता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – वन्यवृत्तिः – वने भवं वन्यं (कन्दमूलादिकं) वन + य), वन्यम् एव वृत्तिः (भोजनं) यस्य असौ (बहुव्रीहि)। आत्मा. – आत्मनः अनुगमनम् आत्मानुगमनं (षष्ठीतत्पुरुष) तेन। इमाम् – इदम् स्त्री.द्वितीया एकवचन। गाम् – गो द्वितीया ए.। प्रसादयितुम् – प्र + सद् + णिच् + तुमुन्।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – उपमा।

प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाः स्थितायां स्थितिमाचरेः।
निषण्णायां निषीदास्यां पीताम्भसि पिबेरपःङ्क89ङ्क

अन्वय – अस्याम् प्रस्थितायाम् त्वम् प्रतिष्ठेथाः, स्थितायाम् स्थितिम् आचरेः, निषण्णायाम् निषीद, पीताम्भसि अपः पिबेः।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महर्षि वसिष्ठ राजा दिलीप को नन्दिनी गाय का अनुसरण (पीछे–पीछे चलने को) करने को कहते हैं।

अनुवाद – इस नन्दिनी गाय के चलते रहने पर आप भी चलें, इसके खड़ी हो जाने पर आप भी खड़े हो जायें। इसके बैठ जाने पर आप भी बैठ जायें तथा जब यह जल पीने लगे तब ही आप भी जल पिया करें।

भावार्थ – वसिष्ठ नन्दिनी की सेवा करने की विधि का वर्णन करते हुए बताते हैं कि इस गाय के प्रस्थान करने पर चल पड़ने पर तुम भी चल पड़ो। इसके रुक जाने पर तुम भी रुक जाओ। इसके बैठ जाने पर तुम भी बैठ जाओ। इसके द्वारा जल पीने पर ही तुम्हारे द्वारा भी जल पिया जाना चाहिये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अस्याम् – इदम् स्त्री. सप्तमी एकवचन। प्रस्थितायाम् – प्र + स्था + क्त स्त्री. सप्तमी एकवचन। अस्यां प्रस्थितायाम्, (अस्यां) स्थितायाम् (अस्यां) निषण्णायाम् तथा (अस्यां) पीताम्भसि – इन चारों में सति सप्तमी है। प्रतिष्ठेथाः – प्रति + स्था आत्मने. विधिलिङ् मध्यम एकवचन (सम् अव, प्र तथा वि उपसर्गों से युक्त होने पर स्था धातु आत्मनेपदी होती है)। स्थितिम् – स्था + क्तिन द्वितीया एकवचन। आचरेः – आ + चर् + वि. लिङ् मध्यम एकवचन। निषण्णायाम् – नि + सद् + क्त स्त्री. सप्तमी एकवचन। निषीद – नि + सद्–लोट् मध्यम एकवचन। पीतम् – पा + क्त। पीता. – पीतम् अम्भः यया सा पीताम्भाः (बहुव्रीहि) तस्याम्। अप. – अप् द्वितीया

बहुवचन। पिब – पा + लोट् मध्यमपुरुष एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

वधूर्भक्तिमती चैनामर्चितामातपोवनात्।
प्रयता प्रातरन्वेतु सायं प्रत्युद्व्रजेदपि॥९०॥

अन्वय – वधूः भक्तिमती प्रयता च अर्चिताम् एनाम् प्रातः आतपोवनात् अन्वेतु, सायमपि प्रत्युद्व्रजेत्।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महर्षि वसिष्ठ रानी सुदक्षिणा को भी नन्दिनी की सेवा परिचर्या करने को कहते हैं।

अनुवाद – वधू सुदक्षिणा की भक्तिभावपूर्वक पूजा की हुई उस नन्दिनी गाय के पीछे–पीछे प्रातःकालीन तपोवन के अन्त तक जाये तथा सायंकाल भी आगे से जाकर इसकी अगवानी करे।

भावार्थ – वसिष्ठ दिलीप को निर्देश देते हैं कि वधू सुदक्षिणा भी भक्तिभाव से युक्त होकर; शुद्ध आचरण से इसकी नन्दिनी की पूजा करके तपोवन तक इस धेनु का अनुसरण करे तथा सायंकाल में भी उसके स्वागत के लिए पुनः जाना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – भक्तिमती – भक्तिः अस्याः अस्ति इति (भक्ति–मतुप्)। प्रयत – प्र + यम् + क्त। अर्चित – अर्च + क्त। एनाम् – एतत् + स्त्री द्वितीया। आ तपोवनात् – यहाँ पर आ (आङ्) मर्यादा के अर्थ में है, इसलिये इसके योग में तपोवन शब्द के साथ पंचमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। अन्वेतु – अनु + इ + लोट् प्रथम एकवचन। प्रत्युद्व्रजेत् – प्रति + उत् + व्रज् विधिलिङ् प्रथम एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

इत्याप्रसादादस्यास्त्वं परिचर्यापरो भव।
अविघ्नमस्तु ते स्थेयाः पितेव धुरि पुत्रिणाम्॥९१॥

अन्वय – इति त्वम् आ प्रसादात् अस्याः परिचर्य्यापरः भव, ते अविघ्नम् अस्तु पिता इव पुत्रिणाम् धुरि स्थेयाः।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महर्षि वसिष्ठ नन्दिनी की सेवा करते समय विघ्न नहीं आना चाहिए इसका निर्देश तथा महर्षि वशिष्ठ का राजा दिलीप को आशीर्वाद दिया।

अनुवाद – इस प्रकार आप इसके प्रसन्न होने तक इस नन्दिनी की सेवा करते में तत्पर रहो। तुम्हें किसी प्रकार का विघ्न न हो। पिता के समान पुत्र वालों में आप श्रेष्ठ होवें।

भावार्थ – इस प्रकार मेरे द्वारा निर्दिष्ट उपाय से तुम इसके गाय के प्रसन्न होने तक इसकी सेवा में लगे रहो। तुम्हारी साधना निर्विघ्न पूर्ण हो और शीघ्र ही तुम्हें अपने पिता की तरह पुत्रवालों में अग्रणी होना चाहिए यह मेरा आशीष है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आ प्रसादात् – मर्यादा अर्थ में आङ् में योग में पंचमी, किन्तु समास नहीं वैकल्पिक (वैभाषिक) होने के कारण। परिचर्यापरः – परिचर्यायां परः (संलग्नः) इति परिचर्यापरः (सप्तमीतत्पुरुष)। अविध्नम् – विघ्नानाम् अभावः (अर्थाभावे अव्ययीभाव समास) अस्तु – अस् + लोट् प्रथम एकवचन। पुत्रिणः – पुत्राः एषां सन्ति इति पुत्र + (प्रशंसायाम्) इन्। स्थेयाः – स्था + (आशीरर्थे) लिङ् मध्यम एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

अलङ्कार – उपमा।

तथेति प्रतिजग्राह प्रीतिमान्सपरिग्रहः।
आदेशं देशकालज्ञः शिष्यः शासितुरानतः॥९२॥

अन्वय – देशकालः प्रीतिमान् सपरिग्रहः शिष्यः आनतः सन् शासितुः आदेशम् तथा इति प्रतिजग्राह।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में राजा दिलीप प्रसन्न होकर गुरु वशिष्ठ का आदेश स्वीकार्य (शिरोधार्य) करते हैं।

अनुवाद – देशकालः प्रीतिमान् सपरिग्रहः शिष्यः आनतः सन् शासितुः आदेशम् तथा इति प्रतिजग्राह।

भावार्थ – देश और काल के ज्ञाता एवं प्रसन्न होकर शिष्य राजा दिलीप ने परिवार सहित नम्रता से शासक आज्ञा देने

वाले गुरु वसिष्ठ के आदेश को 'वैसा ही करूँगा', कहकर शिरोधार्य किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – देशकालज्ञः – देशः च कालः च इति देशकालौ (द्वन्द्व), तौ जानाति इति देशकालज्ञः (उपपदसमास)। प्रीतिमान् – प्रीतिः अस्य अस्ति इति (प्रीति मतुप्) सपरिग्रहः – परिग्रहेण सह वर्तते इति (बहुव्रीहिसमास)। शिष्यः – शासितुं योग्यः (शास् + क्यप्)। आनतः – आ + नम् + क्त। शासितुः – शास् = षष्ठी ए.। प्रतिजग्राह – प्रति + ग्रह + लिट् प्रथम एकवचन।

छन्द – अनुष्टुप्।

अथ प्रदोषे दोषज्ञः संवेशाय विशां पतिम्।
सूनुः सूनृतवाक्स्त्रष्टुर्विससर्जोर्जितश्रियम्‌॥93॥

अन्वय – अथ प्रदोषे दोषज्ञः सूनृतवाक् स्त्रष्टुः सूनुः उदितश्रियम् विशांपतिम् संवेशाय विससर्ज।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महर्षि वसिष्ठ राजा दिलीप के सोने का समय जानकर सोने की आज्ञा देते हैं।

अनुवाद – इसके अनन्तर रात में विद्वान् सत्य और प्रिय बोलने वाले ब्रह्म के पुत्र महर्षि वसिष्ठ ने राजा दिलीप को सोने की आज्ञा प्रदान की।

भावार्थ – इसके बाद रात्रिकाल हो जाने पर विद्वान हितकारी तथा मनोहारी वचन कहने वाले ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ ने धन-धान्य और बल से सम्पन्न राजा दिलीप को शयन करने के लिए अनुमति प्रदान की।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – दोषज्ञः – दोषान् (अवगुणान्) जानाति इति (उपपदसमास)। सूनृवाक् – सूनृता वाक् यस्य असौ (बहुव्रीहि), स्त्रष्टुः – सृजति इति स्त्रष्टा (सृज् + तृ) तस्य। अर्जित. – अर्जिता श्रीः यस्य असौ अर्जितश्रीः – (बहुव्रीहि) तम्। विशांपतिम् – विशांपतिः (अलुक् षष्ठीतत्पुरुष) तम्। संवेशाय – सं + विश् + अ चतुर्थी एकवचन। विससर्ज – वि + सृज् लिट्।

छन्द – अनुष्टुप्।

सत्यामपि तपःसिद्धौ नियमापेक्षया मुनिः।
कल्पवित्कल्पयामास वन्यामेवास्य संविधाम्‌॥94॥

अन्वय – तपः, सिद्धौ, सत्याम् अपि कल्पवित्, मुनिः, नियमापेक्षया, अस्य, वन्याम् एव संविधाम् कल्पयामास।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने वसिष्ठ द्वारा राजा दिलीप के लिये मुनियों के भोग्य योग्य (भोजन और सोने की व्यवस्था) आदि सामग्री का वर्णन करते हैं।

अनुवाद – व्रत और व्यवहार आदि को जानने वाले महर्षि वसिष्ठ ने अपने तप के प्रभाव से अन्य राजकीय भोग्य सामग्री को उपस्थित करने की शक्ति रखते हुये भी व्रत के नियमों के विचार से वनवासी व्रतियों की ही सामग्री बताई।

भावार्थ – शास्त्रों में बताये गये व्रत और नियमों के ज्ञाता गुरु वसिष्ठ जो स्वयं तपस्वी और सिद्ध थे, राजा द्वारा स्वीकार किये गये नियम पालन का विचार करके वन जीवन की उपयोगितावाली सामग्री के संग्रह करने में लग गये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – तपः सिद्धौ – तपसा सिद्धिः-(तृतीयातत्पुरुष) तस्याम्। सत्याम् – अस्ति इति सत (अस् + शतृ) स्त्रीलिंगे सति, तस्याम्। कल्पवित् – कल्पं वेत्ति इति (उपपदसमास)। नियमापेक्षया – नियमस्य अपेक्षा (षष्ठीतत्पुरुष) तथा। वन्याम् – वने भवा वन्या ताम्। सविधा – संविधीयते अनया इति (सं + वि + धा + क)। कल्पयामास – कल्प् + णिच् + लिट्।

छन्द – अनुष्टुप्।

निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशालामध्यास्य प्रयतपरिग्रहद्वितीयः।
तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां संविष्टः कुशशयने निशां निनाय॥95॥

अन्वय – प्रयतपरिग्रहद्वितीयः, सः (राजा) कुलपतिना निर्दिष्टाम् पर्णशालाम् अध्यास्य, कुशशयने संविष्टः तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानाम्, निशाम् निनाय।

प्रसङ्ग – प्रस्तुत श्लोक में पर्णशाला में, पर्ण चटाई पर पत्नी सुदक्षिणा के साथ सोये हुये राजा दिलीप का महर्षि वसिष्ठ की आज्ञा से ब्रह्म मूहुर्त्त में निद्रा का त्याग वर्णित हुआ है।

अनुवाद – कुलपति महर्षि वसिष्ठ के द्वारा बताई गई पर्णशाला में जाकर अपनी धर्मपत्नी सुदक्षिणा के साथ कुश के आसन पर सोये हुए राजा दिलीप ने गुरु वसिष्ठ के शिष्यों के वेदपाठ करने के कारण जानी गई प्रभात वाली रात को व्यतीत किया।

भावार्थ – उस राजा दिलीप ने कुलपति ऋषि वसिष्ठ द्वारा बतायी हुई पर्ण कुटीर में प्रवेश करके एक पत्नी व्रत का पालन करते हुए, कुशासन के बिस्तर पर सोकर शिष्यों के अध्ययन से सूचित होकर रात्रि को व्यतीत किया। अर्थात् प्रातःकाल में छात्रों के वेदाध्ययन करने की ध्वनि को कानों से सुनकर राजा जग गया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – कुलतिना – कुलस्य पतिः कुलपति (षष्ठीतत्पुरुषसमास) तेन। निर्दिष्टाम् – निर् + दिश् + क्त स्त्री.द्वितीया ए.। पर्णशाला – पर्णानां पर्णनिर्मिता वा शालां (षष्ठीतत्पुरुषसमास) या मध्यमपदलोपी। अध्यास्य – अधि + आस् + ल्यप्। पर्णशालाम् अध्यास्य – आस् धातु के साथ अधि उपसर्ग के योग में अधिकरण में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। कुश. – कुशायां शयनं कुशशयनं (षष्ठीतत्पुरुष) तस्मिन्। संविष्ट – सम् + विश् + क्त। प्रयत. – प्रयतः परिग्रहः प्रयत परिग्रहः (कर्म.), सः एव द्वितीयाः यस्य सः (बहुव्रीहि)। द्वितीया – द्वयोः – पूरणः (द्वि + तीय) तच्छिष्या. – तस्य शिष्याः तच्छिष्याः (षष्ठीतत्पुरुष), तेषाम् अध्ययनं तच्छिष्याध्ययनं (षष्ठीतत्पुरुष), तेन निवेदितं तच्छिष्याध्ययननिवेदितं (तृतीयातत्पुरुष), तादृशम् अवसानं यस्या सा तच्छिष्याध्ययननिवेदितामाना (बहुव्रीहि) ताम्, निनाय – नी + लिट् प्रथम एकवचन।

छन्द – प्रहषिणी।

8.4 सारांश

रघुवंश महाकाव्य के इस अंश में महाकवि कालिदास ने महर्षि वसिष्ठ के मन्त्र (मानुषी आपत्तियों का प्रतिकारों का) का वर्णन किया है जिनमें राजा दिलीप गुरु वशिष्ठ से कहते हैं कि – हे मंत्रदृष्टा गुरुवर! यज्ञ यागादि करने वाले, हे मेरे श्रेष्ठ गुरु देव! आपके द्वारा याज्ञवलियों में नियमपूर्वक दी गई हवि ही अनावृष्टि काल में वर्षा के रूप को धारण करके धान्य के लिए, कृषि के लिए जल बरसा देती है। मेरे राज्य में किसी भी प्रकार के दैवी उत्पात, दुर्भिक्ष, भूकम्प, उल्कापात आदि का भय नहीं, इस सब का कारण आपका ब्रह्मतेज ही है।

राजा दिलीप ऋषि वसिष्ठ से अपने हार्दिक विक्षोम को प्रकट करता हुआ कहता है कि निश्चय ही मेरी मृत्यु के बाद सन्तान के अभाव के कारण पिण्डदान करने की परम्परा टूट जायेगी, इसे ध्यान में रखते हुए पितृभोज्य के संग्रह करने में ही लगे हुए पूर्वज–पितृगण श्राद्धकर्म में दिए गये भोज्य को तृप्ति से नहीं खाते हैं।

मुनि वसिष्ठ ने समाधिस्थ होकर कारण पता कर सन्तान के अवरोध का कारण बताते हुए कहते हैं कि इन्द्र को अपनी सेवा में प्रसन्न करके जब तुम स्वर्गलोक में पृथ्वीलोक की ओर आने वाले मार्ग से आ रहे थे, तो तुम्हारे मार्ग में कल्पवृक्ष की छाया में कामधेनु बैठी हुई थी। ऋतुस्नाता (रजस्वला) रानी सुदक्षिणा को धर्म के लोप के भय से सुदक्षिणा को याद करते हुए प्रदक्षिणा करने योग्य इस कामधेनु के प्रति आप ने अच्छा आचरण नहीं किया, यही आप दोनों का अपराध है। इसी कामधेनु ने तुम को निःसन्तान रहने का शाप दिया, जिसको जल–विहार करने के कारण शब्द करते रहने पर वह शाप तुम्हारे द्वारा नहीं सुना गया। तपोनिष्ठ वसिष्ठ मुनि दिलीप को बताते है कि कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की हृदय से सेवा करने पर इस शाप से तुम को मुक्ति मिल जायेगी। वसिष्ठ वर्णन करते हैं कि इस नन्दिनी का थोड़ा–थोड़ा गरम दूध यज्ञ के अन्त में किए गये स्नान से भी अधिक पवित्र था। वसिष्ठ दिलीप को निर्देश देते हैं कि वधू सुदक्षिणा भी भक्तिभाव से युक्त होकर; शुद्ध आचरण से इसकी नन्दिनी की पूजा करके तपोवन तक इसका धेनुका अनुसरण करे तथा उसे सायंकाल में भी उसके स्वागत के लिए पुनः जाना चाहिए। उस राजा दिलीप ने कुलपति ऋषि वसिष्ठ द्वारा बतायी हुई निर्दिष्ट पर्ण कुटीर में प्रवेश करके एक पत्नी वृत का पालन करते हुए, कुशासन के विस्तर पर सोकर शिष्यों के अध्ययन से सूचित होकर रात्रि को व्यतीत किया।

8.5 बोध–प्रश्न

1. प्रथम सर्ग का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

2. निम्न श्लोक का सप्रसंग अनुवाद एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी लिखिए –

तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात्प्रशमितारिभिः।
प्रत्यादिश्यन्त इव में दृष्टलक्ष्यभिदः शराःङ्क61ङ्क

किंतु वध्वां तवैतस्यामदृष्टसदृशप्रजम्।
न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनीङ्क65ङ्क

तया हीनं विधातर्मी कथं पश्यन्न दूयसे।
सिक्तं स्वयमिव स्नेहाद्वन्ध्यमाश्रमवृक्षकम्ङ्क।7ङ्क

पुरा शक्रमुपस्थाय तवोर्वी प्रति यास्यतः।
आसीत्कल्पतरुच्छायामाश्रिता सुरभिः पथिङ्क75ङ्क

अवजानासि मां यस्मादतस्ते न भविष्यति।
मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप साङ्क77ङ्क

हविषे दीर्घसत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतसः।
भुजंगपिहितद्वारं पातालमधितिष्ठतिङ्क8ङ्क

ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला।
बिभ्रती श्वेतरोमाङ्कं संध्येव शशिनं नवम्ङ्क83ङ्क

रजः कणैः खुरोद्धूतैः स्पृशद्भिर्गात्रमन्तिकात्।
तीर्थाभिषेकजां शुद्धिमादधाना महीक्षितःङ्क85ङ्क

अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगणयात्मनः।
उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत्ङ्क87ङ्क

तथेति प्रतिजग्राह प्रीतिमान्सपरिग्रहः।
आदेशं देशकालज्ञः शिष्यः शासितुरानतःङ्क92ङ्क

सत्यामपि तपःसिद्धौ नियमापेक्षया मुनिः।
कल्पवित्कल्पयामास वन्यामेवास्य संविधाम्ङ्क94ङ्क

8.6 सहायक ग्रंथ

1. रघुवंश महाकाव्यम्, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई
2. रघुवंश महाकाव्यम्, (प्रथम सर्ग), डॉ. जगन्नाथ पाण्डेय, जयपुर
3. कालिदास, चन्द्रबली पाण्डे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
4. रघुवंश – चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस 1965।

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध–प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी इकाई से स्वयं खोजें।